राजगुरू भट्टराजा
वैद्य रविशंकर जी शास्त्री

जन्म: 5 अप्रेल 1925

स्वर्गवास: 11 अगस्त 2012

स्मृति वीथी

सर्व आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण समाज, जयपुर

स्थापना : सन् 2006

पंजीकरण संख्या : 52/2007-08

स्व. भट्टराजा रविशंकर जी शास्त्री

स्व. श्रीमती सुशीला देवी रविशंकर जी (नयना बेन)

सिटी पैलेस जयपुर में आयोजित सम्मान समारोह के अवसर पर पूर्व महाराजा सवाई भवानी सिंह जी के परिवार के साथ राजगुरू भट्टराजा रविशंकर जी शास्त्री अन्य संत एवं महंत।

सर्व आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण समाज, जयपुर

स्थापना : सन् 2006 पंजीकरण संख्या : 52/2007-08

राजगुरू भट्टराजा

वैद्य रविशंकर जी शास्त्री

जन्म: 5 अप्रेल 1925 स्वर्गवास: 11 अगस्त 2012

की वार्षिकी के अवसर पर

स्मृति वीथी

का विमोचन

दिनांक : 16 अगस्त 2013

वार्षिकी के अवसर पर स्मारिका का विमोचन करते हुए
श्री शिव कुमार शर्मा, श्री लोकेश कुमार भट्ट, श्री केशव लाल शर्मा
मुख्य अतिथि आचार्य डॉ. नवल किशोर जी कांकर एवं विशिष्ट अतिथि श्रीमान वैद्य फूलचन्द जी शर्मा

स्थापना : 2006 ।।श्री देवगदाधरो विजयते।। पंजीकरण संख्या : 52/2007-08

सर्व आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण समाज, जयपुर

भट्टराजाजी की हवेली, 1098, चूरुकों का रास्ता, चौड़ा रास्ता, जयपुर-302003

संरक्षक
स्व. राजगुरू भट्टराजा वैद्य श्री रविशंकर शास्त्री

सलाहकार समिति

श्री केशवलाल शर्मा (09413749261)
श्री शिवकुमार भट्ट (09799740643)
श्री गोविन्द लाल भट्ट
श्रीमती सावित्री देवी भट्ट
श्री लोकेश कुमार भट्ट (विधि प्रकरण) (09828116021)
श्रीमती पद्मा शर्मा (09799970316)

कार्यकारिणी

अध्यक्ष :
श्री राकेश कुमार भट्ट (09828109445)
उपाध्यक्ष :
श्री महेश रणा (0141 2602969)
श्री अरुण शर्मा (0141 2613809)
महासचिव :
श्री हेमन्त भट्ट (09829094987)
कोषाध्यक्ष :
श्री अमर कुमार शर्मा (09829670997)
शैक्षणिक सचिव :
श्रीमती शैलप्रभा रणा (0141 2602969)
सांस्कृतिक सचिव :
श्री राजेश भट्ट (09314521655)
श्रीमती अमिता भट्ट (09887199182)
सह सचिव :
श्री मनीष भट्ट (09828156212)
सदस्य :
श्री राहुल भट्ट (09829094987)
श्री महेश भट्ट (09314521655)
श्री कमलेश भट्ट (09828156212)
श्रीमती मिथिलेश भट्ट (09460145177)
श्रीमती रेखा भट्ट (09351313594)

सम्पादक मण्डल

श्री राकेश कुमार भट्ट
श्री अमर कुमार शर्मा
श्री राहुल भट्ट

अनुक्रमणिका

क्र.सं.	विवरण	पृष्ठ सं.
1.	जीवन परिचय	1
2.	अविस्मरणीय राजगुरू भट्टराजा वैद्य श्री रविशंकर शास्त्री जी आचार्यः डॉ. नारायणशास्त्री काङ्करः	5
3.	समवेदना प्रकाश आचार्यः डॉ. नारायणशास्त्री काङ्करः	8
4.	भट्टराजा वैद्य श्री रविशंकर जी शास्त्री वैद्य फूलचन्द शर्मा	10
5.	स्मरणांजलि डा. सुबोध चन्द्र शर्मा, डा. रविदत्त शर्मा, डा. गोविन्द चन्द्र शर्मा	13
6.	एक विभूति पण्ड्या केशव लाल शर्मा	16
7.	अविस्मरणीय संस्मरण लोकेश कुमार भट्ट	18
8.	"पितृदेवो भव" राकेश कुमार भट्ट	20
9.	छाया चित्र वीथी	25-40
	भट्टराजा वैद्य श्री रविशंकर जी शास्त्री द्वारा रचित	
10.	श्री श्यामल त्रिकम	41
11.	स्वस्ति पन्थानमनुचरेम	42
12.	दास ब्रह्म भगवान जगदीश	44
13.	आतम राम अवर नहि दूजा	46
14.	शंयोरभिश्रवन्तु नः	51
15.	सनातन संस्कृति एवं उपवीत संस्कार	52
16.	सामयिक संगीत	57
17.	औमित्येकाक्षरम ब्रह्म	60
18.	अनन्यत्व ही प्रेम है	62
19.	वेद और पर्यावरण चेतना	65
20.	प्रणय	67
21.	श्रद्धांजली श्री सत्यकाम शास्त्री, श्री अखिलेश शास्त्री	69

सम्पादकीय

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।

(श्रीमद्भगवद्गीता 6। 32)

हे अर्जुन जो योगी अपनी ही भांति समस्त भूतों में सम (आत्मा को) देखता है और सुख अथवा दुःख को भी सब में सम देखता है, वह योगी परम श्रेष्ठ माना गया है।

अपने जीवन में सभी को समान भाव से देखने वाले स्व. भट्टराजा वैद्य रविशंकर जी शास्त्री की स्मृति में यह अंक प्रस्तुत करते हुए हम गौरव का अनुभव कर रहे है। हमें समाज के बहुआयामी, विद्वान, मृदुभाषी व्यक्तित्व के बारे में कुछ जानकारियां प्रस्तुत करने का अवसर प्राप्त हुआ है। "सर्व आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण समाज, जयपुर" के संस्थापक संरक्षक होने के कारण इनके मार्गदर्शन में ही सदस्यों की कर्मठ एवं सक्रिय भागीदारी के परिणाम स्वरूप समरसतापूर्ण संगठन की स्थापना संभव हो सकी।

हम विशेष तौर पर भट्टराजाजी के अभिन्न एवं आदरणीय मित्रों के कृतज्ञ हैं जिन्होंने स्मारिका के इस अंक के लिये अपने भावों की अभिव्यक्ति प्रदान कर, अविस्मरणीय योगदान दिया है। निःसंदेह अनके प्रति आत्मीय आभार प्रदर्शित करने के लिए शब्द नहीं है।

स्मारिका में उपरोक्त के अतिरिक्त भट्टराजा जी के द्वारा लिखे गये कुछ लेखों का तथा उनकी जीवन यात्रा के कुछ दुर्लभ छायाचित्रों का संग्रह भी प्रस्तुत किया जा रहा है।

इस अंक को समर्पित करते हुए उनके जीवन की झलक को दर्शाने का एक विनम्र प्रयास किया गया है। आशा है यह स्मारिका संदर्भ की दृष्टि से सार्थक सिद्ध होगी।

सम्पादक मण्डल
सर्व आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण समाज, जयपुर।

शन्कोतीहैव यः सोढुं प्राक्शरीरविमोक्षणात्।
कामक्रोधोद्भवं वेगं स युक्तः स सुखी नरः।।
(श्रीमद्भगवद्गीता 5।23)

यदि इस शरीर को त्यागने से पूर्व कोई मनुष्य इन्द्रियों के वेगों को सहन करने तथा इच्छा एवं क्रोध के वेग को रोकने में समर्थ होता है, तो वह इस संसार में सुखी रह सकता है।

राजगुरू भट्टराजा वैद्य रविशंकर जी शास्त्री
जीवन परिचय

आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण समाज के प्रतिष्ठित एवं पूज्य भट्ट रविदत्त रूपराम जी को जयपुर रियासत के तत्कालीन महाराजा सवाई माधोसिंह जी ने सागवाड़ा से सन् 1750–60 में बुलाकर न केवल सम्मानित कर राजगुरू बनाया अपितु **''भट्टराजा जी''** की पदवी भी प्रदान की। इसी घराने की छठी पीढ़ी में भट्टराजा विष्णुशंकर शिवशंकर जी थे। भट्टराजा विष्णुशंकर जी एवं उनकी धर्मपत्नी भट्याणी मालती बाई के चार पुत्रियां तथा एक पुत्र हुए। सुपुत्र का नाम **राजगुरू भट्टराजा वैद्य रविशंकर जी शास्त्री** था। इनका जन्म 5 अप्रैल 1925 को जयपुर में हुआ। मात्र साढ़े चार वर्ष की अल्पायु में ही सन् 1930 में इनके पिताजी का स्वर्गवास हो गया, तत्पश्चात् अपने माताजी एवं दादीजी के सानिध्य में ही आप पल कर बड़े हुए।

आपकी तीन बड़ी बहिनें थी। सबसे बड़ी बहिन श्रीमती भंवर बाई थीं जिनका विवाह जयपुर के ज्योतिषराय श्री नन्दलाल जी से हुआ था। दूसरी बहिन श्रीमती राज कुंवर बाई थी जिनका विवाह जयपुर के श्री रामलाल जी पंडया से हुआ था। तीसरी बहिन श्रीमति गोविन्द कुंवर बाई थी जिनका विवाह उदयपुर निवासी भट्ट जी श्री गोवर्द्धन लाल जी हुआ था। एक छोटी बहिन लंझा बाई का अल्पायु में ही निधन हो गया था।

आपका विवाह सन् 1944 में इंदौर में मालवा के सुप्रसिद्ध साहित्यकार परम सम्मानीय स्व. श्री गोविन्दलाल जी शास्त्री की सुपुत्री श्रीमती सुशीला देवी (नयना बेन) के साथ हुआ था। आपके दो पुत्र एवं दो पुत्रियां हुई। दो सुपुत्र श्री लोकेश कुमार भट्ट (एडवोकेट) एवं श्री राकेश कुमार भट्ट (इन्जिनियर) हैं। सबसे बड़ी सुपुत्री श्रीमती उर्मिला बेन का विवाह अहमदाबाद निवासी श्री रमेश चन्द्र जी आचार्य से हुआ था एवं छोटी सुपुत्री श्रीमती प्रभा भट्ट का विवाह श्री गिरधारी लाल जी भट्ट से हुआ था, जो अभी कोटा में हैं, किन्तु श्रीमती प्रभा भट्ट का आकस्मिक निधन दिसम्बर 2010 में हो गया।

भट्टराजा वैद्य रविशंकर जी शास्त्री ने जयपुर के **महाराजा संस्कृत महाविद्यालय** में शिक्षा ग्रहण की तथा साहित्य शास्त्री की डिग्री प्राप्त की। तत्पश्चात् सन् 1955 में जयपुर के ''राजकीय आयुर्वेदिक महाविद्यालय'' से आयुर्वेद चिकित्सा की डिग्री **भिषगाचार्य** प्राप्त की तथा **''वैद्य''** बने। उन्होंने अपनी आयुर्वेद की सेवाएं, स्वयं के निजी चिकित्सालय प्रारम्भ में **''कला फार्मेसी''** के तथा बाद में **''शिव आयुर्वेदिक औषधालय''** के माध्यम से प्रदान कीं। इसके साथ साथ वर्ष 1967 से 1985 तक आपने अपनी सेवाएं **''धन्वन्तरि औषधालय''** जयपुर में भी प्रदान की।

आयुर्वेद जगत में उनकी उल्लेखनीय सेवाओं तथा विद्वता के आधार पर उन्हें 6 अगस्त, 2007 को **''स्वामी लक्ष्मीराम पीठ, जयपुर''** के तत्वावधान में आयोजित राष्ट्रीय स्तर के **विद्वत्सम्मान** समारोह में **आयुर्वेद एवं संस्कृत** में उल्लेखनीय सेवाओं के लिए सम्मानित किया गया।

आपको जयपुर राजघराने के राजगुरू परिवार से सम्बद्ध होने के कारण ''ताजीम एवं स्वर्ण'' से सम्मानित किया जाता रहा। आपको मातमी वर्ष 1946 में तत्कालीन महाराजा सवाई मानसिंह जी

द्वारा धारण करवायी गयी। तत्पश्चात् जयपुर के भूतपूर्व महाराजा द्वारा जीवनपर्यन्त परम्परानुसार विभिन्न अवसरों पर आयोजित समारोहों में आशीर्वाद प्राप्त करने हेतु आमन्त्रित कर पूर्व की भांति सम्मान प्रदान किया जाता रहा।

उन्हें भारतीय शास्त्रीय संगीत में भी गहरी अभिरूचि थी। जयपुर के सुप्रसिद्ध स्व. श्री किशन जी उस्ताद के पास आपने अपने संगीत की प्रारम्भिक शिक्षा ग्रहण की तथा सितार वादक बने। तत्पश्चात् आपने जयपुर के स्व. श्री शशिमोहन भट्ट से भी सितारवादन की शिक्षा प्रदान प्राप्त की। आपने "भातखंडे संगीत विद्यापीठ" लखनऊ से **संगीत विषारद** की परीक्षा भी उत्तीर्ण की।

आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण जाति के गौरव होने के कारण **मालवा आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण मंडल** द्वारा दिनांक 01 मई 2008 को इन्दौर में आयोजित भव्य समारोह मे प्रशास्ति पत्र पीताम्बर एवं श्रीफल प्रदान कर सम्मानित किया गया।

सर्व आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण समाज, जयपुर के वयोवृद्ध एवं संस्थापक संरक्षक होने के नाते औदुम्बर जाति के शिखर एवं अनुसरणीय कृत्तित्व को दिनांक 14 अप्रैल 2009 को सम्मानित किया गया तथा आराध्य देव देवगदाधर राय से प्रार्थना की गयी कि ईश्वर उन्हें स्वस्थ रखकर दीर्घायु प्रदान करें।

उन्होंने अपने निजी जीवन में भी अनुशासन को विशेष महत्व दिया तथा नियमित एवं सात्विक जीवन जीने के कारण ही अन्तिम क्षणों तक लगभग स्वस्थ रह पाये। उनका स्वर्गवास दिनांक 11 अगस्त 2012 को जयपुर में हुआ। ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें। उनके जीवन से प्रेरणा लेते हुये, उनके बताये गये मार्ग का अनुसरण करते हुए कार्य करना ही सही अर्थों में उनके प्रति सच्ची श्रद्धान्जलि होगी।

हेमन्त भट्ट
महासचिव

राकेश भट्ट
अध्यक्ष

वेदेषु यज्ञेषु तपःसु चैव दानेषु यत्पुण्यफलं प्रदिष्टम्।
अत्येति तत्सर्वमिदं विदित्वा योगी परं स्थानमुपैतिचाद्यम्।।
(श्रीमद्भगवद्गीता 8 ।28)

जो व्यक्ति भक्ति मार्ग स्वीकार करता है, वह वेदाध्ययन, तपस्या, दान, दार्शनिक तथा सकाम कर्म करने से प्राप्त होने वाले फलों से वंचित नही होता। वह मात्र भक्त सम्पन्न करके इन समस्त फलों की प्राप्ति करता है और अन्त में परम नित्यधाम को प्राप्त होता है।

श्री विश्वकर्मा विजयतेराम्

मालवा आभ्यंतर औदुम्बर ब्राह्मण मंडल

इन्दौर (म.प्र.)

महराजा श्री रविशङ्करजी शास्त्री

को सादर समर्पित

सम्मान-पत्र

वैदिक संस्कृति और सनातन धर्म को समर्पित औदुम्बर शिरोमणि महराजा स्वामीजी एवं रविदत्तजी के विप्र कुल परम्परा के नैसर्गिक संवाहक और अद्वितीय विद्वान आ.प. महराजा श्री रविशंकरजी शास्त्री ने अपनी निरंतर अध्ययनशीलता और ज्ञान परिमार्जन द्वारा व्यक्तित्व और कृतित्व के माध्यम से औदुम्बर ब्राह्मण समाज में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है।

आप जयपुर के सुप्रसिद्ध विद्वान महराजा विष्णुशंकरजी एवं वात्सल्यमूर्ति महरानी मालतीबाईजी के यशस्वी सुपुत्र हैं। बाल्यकाल में पिताश्री के देहांत हो जाने के बावजूद अपनी प्रकृति प्रदत्त विलक्षण प्रतिभा के फलस्वरूप आपने न सिर्फ वेदांत दर्शन का विधिवत अध्ययन किया, अपितु आयुर्वेद और संगीत में भी अपने महत्व और विशेषज्ञता मानदण्ड स्थापित किया। गत वर्ष जयपुर की विश्व प्रसिद्ध श्री लक्ष्मीराम आयुर्वेद पीठ ने भी आयुर्वेद सेवा हेतु अ.भा. स्तर पर सम्मानित किया। जयपुर के पूर्व नरेश ब्रिगेडियर भवानीसिंहजी भी प्रतिवर्ष जयपुर की विभिन्न तिथियों के सम्मान समारोह पूर्व राजगुरु के रूप में आपका शाल श्रीफल से गुरुपूजन करते हैं।

मालवा के ख्यातनाम धन्य विद्वान श्री गोविन्दलालजी शास्त्री की सुपुत्री स्व. श्रीमती सुशीलादेवी (कानाबेन) आपकी धर्मपत्नी थीं। मालवा के प्रति उनकी आत्मीयता को दृष्टिगत रखते हुए आपने मालवा आभ्यंतर औदुम्बर ब्राह्मण मंडल, इन्दौर के विद्यार्थियों के शिक्षण प्रोत्साहन हेतु प्रति वर्ष स्वर्णपदक की भी घोषणा कर मूर्तरूप दिया।

हे पथप्रदर्शक अग्रज, माँ अहिल्या की पुण्यभूमि पर ऐसे शिखर व्यक्तित्व, अनुसरण कृतित्व, आयुर्वेदाचार्य, संगीतज्ञ एवं वरिष्ठ विद्वान का सम्मान करते हुए संस्था मालवा आभ्यंतर औदुम्बर ब्राह्मण मंडल, इन्दौर स्वयं को गौरवान्वित अनुभव करती है एवं जगपिता श्री वेंकटेश्वर से प्रार्थना करती है कि आप दीर्घायु प्राप्त करें।

वि.सं. २०६५, वैशाख कृष्ण १०

गुरुवार, १ मई २००८

मनोज शर्मा	जी.एस. आचार्य	सत्यकाम शास्त्री
(सचिव)	(संयोजक)	(अध्यक्ष)

तार : आयुर्वेद　　= श्री धन्वन्तरिर्विजयते =　　फोन : 564772, 615397

स्वामि लक्ष्मीराम पीठम्

स्वामिलक्ष्मीरामशोधसंस्थानम्, स्वामिलक्ष्मीरामआयुर्वेदप्रकाशनम्

स्वामिलक्ष्मीरामचिकित्सालयः　जयपुरम् - 302 003 (राजस्थानम्)

आयुर्वेदात्मकं ज्योतिः शाश्वतं नः प्रकाशताम्

सम्मानपत्रम्

क्रमाङ्कः ....　　दिनाङ्कः ....

श्रीमन्तो मान्याः पीयूषपाणयः श्री रविशंकरजी ....महोदयाः।

तत्रभवतां भवतां चिरकालिकायुर्वेदसेवाभिः परमसन्तोषमापन्नः संस्थानप्रन्यासपीठपरिवारः सहर्षमभिनन्दयतितराम्, प्रशंसति च भूतले तत्रभवतां वैदुष्यं प्रामाणिकत्वञ्च।

कामयते च श्रीमतां धन्यं यशस्यशुभलोकमिदं लोन्नतं चिरायुष्यम्।

जयपुरम्　　पीठाचार्यः

महामहिम–राष्ट्रपति–सम्मानित–
म.म.प.श्रीनवलकिशोरकाङ्कर–ज्येष्ठात्मजः,
महामहिम–राष्ट्रपति–सम्मानितः
राजस्थान–सर्वकारतः प्राप्त–योग्यतापुरस्कारः
आचार्यः डॉ. नारायणशास्त्री काङ्करः
विद्यालंकारः एम.ए., पी.एच.डी., डी.लिट.

ॐ
श्री गणेशाय नमः
''श्री''

अविस्मरणीय राजगुरू भट्टराजा वैद्य श्री रविशंकर शास्त्री जी

।। जयन्ति ते सुकृतिनो, रस–सिद्धा कवीश्वराः।
नास्ति येषां यशःकाये, जरा–मरणजं भयम् ।।

शायद भर्त्तहरि जी ने यह उक्ति महामना वैद्यराज भट्टराजा राजगुरू पं. श्री रविशंकर शास्त्री जी जैसे मनीषियों को ही ध्यान में रखकर कही होगी। वास्तव में इस उक्ति में चर्चित सभी गुण स्व. श्री शास्त्री जी में विद्यमान थे और इन्हीं गुणों के कारण पंचभौतिक शरीर से आज हमारे बीच विद्यमान न रहते हुए भी वे अपने यशः शरीर से अवश्य जरामरण से रहित बने हुए अजर अमर हैं। वे सुकृति तो थे ही, रस–सिद्ध कवीश्वर भी थे। उसकी बोली में रस टपकता था। रस ही नहीं टपकता था, आयुर्वेदिक चिकित्सा में रसौषधियों का निर्माण एवम् उनके द्वारा रोगियों को आरोग्य–दान करने के कारण कवीश्वरता भी अर्थात् कविराजता भी उनमें सर्वथा विराजती थी। बंगाल में 'कविराज' शब्द चिकित्सक के लिये प्रयुक्त किया जाने वाला सर्वसाधारण सुपरिचित है।

अध्ययनकाल से ही ये परिश्रमी अध्यवसायी रहे। ये और इनके अभिभावक जानते थे कि 'विद्या राजसु पूज्यते', अतः इनको संस्कृत शिक्षा दिलायी गयी। गुरूजनों ने भी सुशिष्य को प्राप्त कर बड़ी प्रसन्नता से और खुले दिल से इनको अपना विद्या–वैभव वितीर्ण करने में किसी प्रकार की कृपणता नहीं दिखायी। फलस्वरूप इन्होंने साहित्य विषय में शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण कर ली। जनकल्याण की भावना से इन्होंने आयुर्वेद भी सीखा और भिषगाचार्य उत्तीर्ण कर सचमुच कवीश्वर–कविराज ही बन गये। आयुर्वेद–शिक्षा में संस्कृत का ज्ञान उपकारक बना।

पहले संस्कृत–परीक्षोत्तीर्णों को ही आयुर्वेद शिक्षा में प्रवेश दिया जाता था। आगे तो आयुर्वेद में भी संस्कृत का स्वतन्त्र अध्यापन कराने की व्यवस्था की गयी। परन्तु प्रवेश योग्यता में संस्कृत परीक्षोत्तीर्णता की अनिवार्यता, पता नहीं किस कारण हटा दी गयी। फलस्वरूप अब तो संस्कृत–परीक्षोत्तीर्णों को प्रवेश ही नहीं दिया जाता और विज्ञान विषय से उत्तीर्णों को ही प्रवेशार्ह मानकर आयुर्वेद की शिक्षा दी जाती है।

संस्कृत का वाञ्छित ज्ञान नहीं होने से ये कैसे आयुर्वेद के विद्वान् और चिकित्सक बन रहे हैं ?बताने की बात नहीं है। आयुर्वेदिक चिकित्सा के प्रति घटती जनभावना को देखकर इस बात का अनुमान लगाया जा सकता है।

सौभाग्य से श्री शास्त्री जी संस्कृतज्ञ होने से एक सफल विद्वान और चिकित्सक रहे और

इन्होंने राज्य सेवा में रहकर और सेवानिवृत्ति के पश्चात् धन्वन्तरि औषधालय, जयपुर जैसी ख्यातनामा सामाजिक संस्था को अपना अनमोल सहयोग देकर जीवनपर्यन्त लोकसेवा की। अपने आवास स्थल पर भी अपनी जनसेवा निःशुल्क रूप से निभायी। इनसे उपकृत लोग आज भी इनके प्रति श्रद्धावनत और कृतज्ञ हैं। इनकी सेवा से वन्चित वे अपने आपको सर्वथा अनाथ ही समझते हैं।

श्री शास्त्री जी अपने गुण–वैशिष्ट्य से प्रथम मुलाकात में ही सम्पर्कित जनमानस को जीत लेते थे। इनके सहपाठी तो इनसे प्रभावित थे ही। ये भी सत्सगति करने में पीछे नहीं रहते थे। अपने समय के धुरन्धर राजगुरू और विद्वान उनकी मित्रमण्डली में थे। चाम्पावतों के मन्दिर, जौहरी बाजार वाले राजगुरू पं. श्री जगदीश चन्द्रजी कथाभट्ट, बडा ओझा जी हवेली वाले सिरेहड्योढ़ी बाजार के राजगुरू पं. श्री विद्यानाथ जी ओझा, धाभाईजी का खुर्रा, रामगन्ज स्थित राजगुरू पं. श्री चन्द्रनाथ जी मैथिल और उनके दोनों विद्वान सुपुत्र आचार्य पं. श्री भवदत्त जी मैथिल एवं दुर्गादत्त जी मैथिल जैसे विद्वानों से उनका घनिष्ठ सम्पर्क था। सुखः दुःख, खेल–कूद, आमोद–प्रमोद सभी अवस्थाओं में मैने श्री शास्त्रीजी को इनके साथ देखा है।

अपने समय के ख्यातनामा महामहोपाध्याय पं. श्री गिरिधर शर्मा जी चतुर्वेदी, साहित्याचार्य, पं. श्री जगदीश शर्मा जी, पीयूषपाणि वैद्य श्री नन्दकिशोर जी शर्मा, स्वामी श्री जयराम दास जी महाराज, वैद्य श्री कल्याण प्रसाद जी काली पहाड़ी वाले आदि विद्वानों से श्री शास्त्री जी को विद्यावैभव प्रचुर मात्रा में प्रसाद रूप में मिला।

ऐसे महामना, उदार चेता, विद्वान मनीषी श्री शास्त्री जी, जो मुझको अग्रज सारस्वत सहोदर के रूप में मिले उसे मैं अपना परम सौभाग्य ही समझता हूँ। समय–समय पर मैं अपनी समस्यायें इनके सम्मुख रखता तो त्वरित ये उनका समाधान कर दिया करते थे। अब तो समस्यायें, समस्यायें ही बनी रहती हैं। उनका समाधान नहीं हो पाता। बात–बात में अपनी बात की पुष्टि करने के लिये उनके मुखारविन्द से कोई न कोई सुभाषित निकल ही पड़ता था। एक बार दूरभाष से ही बात करते हुए इन्होंने एक सुभाषित बोला तो वह मुझे ह्रदयग्राही लगा और उसे मैंने संस्मरणीय सामग्री में तत्काल सम्मिलित कर लिया। वह सुभाषित इस प्रकार है–

''क्षुत्क्षामस्तनयो, वधूः पर–गृह–प्रेष्याऽवसन्नः सुह्रद,
दुग्धा गौरशनाद्यभाव–विवशा रम्भा–रवोद्गारिणी।
निष्पथ्यौ पितरा वद्दर–मरणौ स्वामी द्विसन्निर्जितो,
दृष्टो येन परं न तस्य निरये प्राप्तव्यमस्त्यप्रियम्।।

जिस व्यक्ति ने अपने पुत्र को भूख से कमजोर, अपनी पत्नी को पराये घर में सेविका के रूप में, मित्र को अवसाद की दशा में, दूध देने वाली गाय को चारा आदि खाद्य वस्तु के न मिलने से रम्भा शब्द करती हुइ, पथ्य न मिलने से मरणासन्न अवस्था में पहुँचे हुए माता–पिता को देखा है, उसको नरक में और कौन सा अप्रिय देखने को बाकी रह जाता है?

एक निर्धन असहाय व्यक्ति की दुर्दशा का दर्शक इससे बड़ा और क्या दूसरा मार्मिक चित्र हो सकता है?

श्री शास्त्री जी जैसे स्वयं सदाचारी, परोपकारी, सर्वभूतहितैषी, गुणग्राही महामनाः पुरुष थे, ठीक वैसी ही प्रकृति इनके आत्मजों में भी मुझे देखने को मिली। विद्या के साथ ये सभी विषय से विभूषित हैं। अपनी माताजी के दिवङ्गत हो जाने पर भी इन्होंने आजीवन अपने पिताजी की पूर्ण सेवा की है। पुत्र वधुओं ने भी श्री शास्त्री जी को अपने पितृतुल्य माना और इनकी भरपूर सेवा की है। एतदर्थ ये सभी अभिवन्दनीय हैं, वन्दनीय हैं।

श्री शास्त्री जी का परिवार फले फूले। स्वर्ग में विराजमान अविस्मरणीय माता–पिता यथापूर्व अपना शुभाशीर्वाद इन पर बरसाते रहें और मुझ अनुज सारस्वत सहोदर को भी श्री शास्त्री जी आशिस् देने में कृपणता न बरतें, बस, इसी विनम्र प्रार्थना के साथ सप्रणति इनसे निवेदन है कि–

भवांस्तत्र देवतासु, विराजमानो मोमुद्यतां नाम।
परमिह भवद्–वियुक्ता, न वयं सुख–शान्तिं प्राप्नुमः।।

–आप भले ही वहाँ देवताओं में विराजमान प्रभुदित हों, परन्तु यहाँ आपसे वियुक्त हम तो सुख–शान्ति नहीं पा रहे हैं।

पदे पदे भवदीयाः नानाविधा मधुरा संस्मृतिरत्र।
आयात्ये व बहु–बहुः, शतप्रतिशत मिति वच्मि सत्यम्।।

–यहाँ आपकी नाना प्रकार की मधुर संस्कृति आती ही है, यह मैं शत–प्रतिशत सत्य कहता हूँ।

भवता सह संवासः, सोनमुक्तहासं पुनः संवादः।
शास्त्रचर्चा सर्वदा, विस्मर्तुं न जातु शक्यते।।

–आपके साथ रहना, उन्मुक्त हास के साथ पुनः संवाद और सदा शास्त्रचर्चा– ये सब कभी विस्मृत नहीं किये जा सकते।

ईर्ष्या द्वेषो निन्दा, क्रोधो ऽ सूया दर्पो दम्भ इमे।
अवगुणास्तु भवति नात्र, दृष्टाः कदाप्यनुभूताश्च।।

–ईर्ष्या, द्वेष, निन्दा, क्रोध, असूया, दर्प, दम्भ – ये सब अवगुण तो आपमें यहाँ न कभी देखे गये और न कभी अनुभूत किये गये।

मन्दस्मितिर्मुखाब्जे, सत्यावाणी भवतो रसनायाम्।
दृष्टिः स्नेह–रसार्द्रा, निश्छलं मनो मे रोचते।।

–आपके मुखारविन्द पर मन्द मुस्कान, रसना पर सत्यवाणी, स्नेहरस से भीगी दृष्टि और निश्छल मन – ये सब मुझे रुचिकर लगते हैं।

सत्यमेतत् कथयामि, नैवात्र कृत्रिमता–लेशः कोऽपि।
अतो भवन्तं नन्तुं, मनोऽभिलषति भूयो भूयः।।

–यह मैं सत्य कता हूँ। इसमें कोई भी कृत्रिमता का लेश नहीं है। अतः आपको बारबार नम न करने के लिये मन अभिलाषा करता है।

ऊनत्रिंशे केसर–विहारे विद्या वैभव–भवने ऽत्र।
जगत्पुरारव्य–जयपुर, वासी कोविद्–कुल–किंकरः।।
विनिवेद्यैवं भवते, स्वहार्द ज्येष्ठ सारस्वत–बन्धो।
श्री रविशंकरशास्त्रिन्!, विरमति नारायणकांकरः।।

विद्या–वैभव भवन, २६, केसर विहार, जगतपुरा, जयपुर–३०२०१७ में निवास करने वाला कोविदकुल–किंकर यह नारायण कांकर हे ज्येष्ठ सारस्वत सुबन्धो वैद्यराज श्री रविशास्त्री जी! आपको इस प्रकार विनिवेदन करके विराम ग्रहण करता है।

आचार्यः डॉ. नारायणशास्त्री काङ्करः

समवेदना प्रकाश

अयि परिपूजनीय–पितृ,–पाद–वियोग–सन्तप्तौ सपरिवारौ।
प्रियवरौ श्रीलोकेश–, राकेश भट्टौ, भ्रातृजकल्पौ! स्वस्ति।।१।।

– हे परिपूजनीय पितृपादों के वियोग से सन्तप्त सपरिवार प्रियवर भ्रातृज–तुल्य श्री लोकेश और राकेश भट्ट जी! स्वस्ति ।

भवत्–पूज्य–पितृपाद, श्री राजगुरू वैद्य रविशंकर शास्त्री ।
आसीन्मे श्रद्धेयो, ज्येष्ठः सारस्वत–सहोदर एव ननु ।।२।।

– आपके पूज्य पितृपाद राजगुरू वैद्य श्री रविशंकर शास्त्री जी मेरे श्रद्धेय ज्येष्ठ सारस्वत सहोदर ही थे।

एतद्वियोगेऽहमपि, भवद्भ्यां सह सर्वथा समवेदनोऽस्मि।
अधुनैनं सु चित्रस्थ–, मेव दर्श दर्श सन्तोषणीयम् ।।३।।

– इनके वियोग में मैं भी आपके साथ सर्वथा समान वेदना वाला हूँ। अब तो चित्र में ही स्थित इनके दर्शन कर करके सन्तोष करना होगा।

नैष मुखेन वदिष्यति, केवलं द्रक्ष्यत्येवास्मान् दुःखिनः।
विधात्रिच्छा–सम्मुखे, न मनुष्य–चिकीर्षा क्वचित् फलति कदापि ।।४।।

– ये मुख से नहीं बोलेंगे, केवल हम दुःखियों को देखेंगे ही। विधाता की इच्छा के सम्मुख मनुष्य की करने की इच्छा कहीं कभी फलती नहीं है।

अतः सधैर्यं सह्यो, वियोगोऽस्य महाभागस्य स्वर्गतस्य।
स्वशरणागतायास्मै, वितरतु चिरशान्तिं भगवान् भूतेशः।।५।।

– अतः इन स्वर्ग में गये हुए महानुभाव का वियोग धैर्य के साथ सहना चाहिये। अपनी शरण में आये हुए इनको भगवान् भूतनाथ चिरशान्ति वितीर्ण करें।

इदमेव प्रार्थयेऽहं, पुनःपुनः प्रणतान्जलिः साम्प्रतमत्र।
अयमेव श्रद्धान्जलि,– रस्मै दिवंगताय महात्मने मेऽपि ।।६।।

– अब मैं यहाँ प्रणतान्जलि बना हुआ यही पुनःपुनः प्रार्थना करता हूँ। इन दिवंगत महात्मा को मेरी भी यही श्रृद्धान्जलि है।

भवद्भ्यामपि गुरुतमं, वियोगमिमं सहितुं सपरिवाराभ्याम्।
ददातु महतीं शक्तिं, स एव दयानिधिर्भगवान् भूतेशः।।७।।

– सपरिवार आपको भी इस गुरुतम वियोग भार को सहने के लिये वे ही दयानिधि भगवान् भूतनाथ महती शक्ति प्रदान करें।

मातापितृ.वियुक्तोऽह,–मिव भवन्तावपि हा! तथा सज्जातौ।
जानेऽहं भवदीयां, पीडामरुन्तुदामनपायिनीं सदा ।।८।।

– मातापिता से वियुक्त मेरी तरह हा! खेद है आप दोनों भी वैसे हो गये। मैं सदा न मिटने वाली आपकी अरुन्तुद पीड़ा को जानता हूँ।

भविष्णू भवन्तावपि, भवतं स्वपितेव विद्या–वैभव–युतौ।
तदीय–यशःसमृद्धिं, संवर्द्धयतं सततं समनोयोगम् ।।६।।

– होनहार आप भी अपने पिताजी के तुल्य ही विद्या वैभव से सम्पन्न बनो और उनकी यशः समृद्धि को मनोयोग के साथ नित्य संवर्द्धित करो।

यदि संस्कृतमधीतं न, कस्मादपि हेतोर्निज–पितुःसकाशात्।
तर्हि नानुतप्तव्यं, शिक्षयिष्याम्यहं संस्कृतं भवन्तौ ।।१०।।

– यदि किसी भी कारण से अपने पिताजी के पास से आप दोनों ने संस्कृत का अध्ययन नहीं किया है तो पश्चात्ताप नहीं करना चाहिये। मैं आप दोनों को संस्कृत सिखा दूँगा।

भवन्तावपि शास्त्रिणा–वाचार्यौ च भवितारौ स्वपितेव।
तदैव राजगुरुत्वं, भविता भोभ्रातृजौ! भवतोः सार्थम् ।।११।।

– आप दोनों भी अपने पिताजी की भाँति शास्त्री और आचार्य बन जाओगे। तभी हे भ्रातृजों! आपका राजगुरु होना सार्थक होगा।

संस्कृतमेवैकमात्र–लोकद्वय–सुधारकं प्रतिष्ठा–प्रदम्।
अत इदमप्यध्येयं, स्व–परोद्धारा मिलाषुकेणावश्यम् ।।१२।।

– संस्कृत ही एकमात्र इह और पर दोनों लोकों को सुधारने वाली और प्रतिष्ठा दिलाने वाली है। अतः अपना और दूसरों का उद्धार चाहने वाले व्यक्ति को इस संस्कृत का भी अध्ययन अवश्य करना चाहिये।

किमति लिखानि भवन्तौ, स्वयं हि राजगुरु–पुत्रौ प्रबुद्धौ स्वः।
किमति लिखानि भवन्तौ, स्वयं हि राजगुरु–पुत्रौ प्रबुद्धौ स्वः।
अतरत्तदाचार्य्यमाशु, येन लोकद्वयं सुध्रियेत वत्सौः ।।१३।।

– मैं अधिक क्या लिखूँ? आप दोनों राजगुरुजी के स्वयं ही प्रबुद्ध पुत्र हो। अतः वहीं शीघ्र कर लेना चाहिये जिससे हे वत्सो! दोनों लोक सुधर जायें।

– युग्मकम् –

ऊनत्रिंशे विद्या,– वैभव–भवने केसर–विहारेऽत्र।
जगत्पुराख्य–जयपुरे, निवास–कारी कश्चनाथम् ।।१४।।
इति विनिवेद्य भवद्भ्यां, स्वं हार्दमात्मीय–भ्रातृजाभ्याम्।
विरमत्याशिषो ब्रुवन्, सम्प्रति नारायण कांकरः।।

– २६, विद्या–वैभव–भवन, केसर–विहार, जगत्पुरा, जयपुर–३०२ ०१७ में निवासकर्ता यह कोई अपने आप दोनों भ्रातृजों को इस प्रकार अपना हार्दिक मन्तव्य विशेष रूप से निवेदित करके अब आशीर्वचन करता हुआ नारायण कांकर विराम ग्रहण करता है।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

आचार्यः डॉ. नारायणशास्त्री काङ्करः

वैद्य फूलचन्द शर्मा
पूर्व प्रोफेसर कार्य चिकित्सा
राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर

वैद्य फूलचन्द शर्मा, भट्टराजा वैद्य रविशंकर जी के साथ बचपन से ही अध्ययन में साथ रहे हैं तथा कर्मक्षेत्र में भी एक ही मार्ग के अनुयायी होने से प्रायः निरन्तर सहयोगी रहे हैं। वैद्य फूलचन्द शर्मा अध्ययन के पश्चात् राज्य सेवा में आ गये और निरन्तर सेवा करते हुए राष्ट्रीय आयुर्वेद संस्थान, जयपुर से सन् 1980 में सेवानिवृत्त होकर अपने निजी संजीवन चिकित्सालय में रोगियों की सेवा कर रहे हैं। पठन–पाठन तथा लेखन की परम्परा में यह **" खाण्डल सन्देश "** पाक्षिक पत्र के प्रधान सम्पादक हैं। इनके साहित्य तथा चिकित्सकीय अनेक लेख पत्र–पत्रिका यथा **" राजस्थान पत्रिका "** में भी प्रकाशित होते रहते हैं। **आखिल भारतीय आयुर्वेद महासम्मेलन** तथा **स्वामी लक्ष्मीराम शोध संस्थान** से सम्मानित किये गये हैं। देश में आयुर्वेदीय सेमीनारों में आपके लेख व भाषण अनेक बार सुने गये हैं।

भट्टराजा वैद्य श्री रविशंकर जी शास्त्री, भिषगाचार्य

भारतीय धर्म एवं दर्शन में कर्म के प्रारब्ध के अनुसार जीव को संसार में आना जाना पड़ता है। जिसने पूर्व जन्म तथा इस जन्म में परोपकार, धर्मार्थ, एवं परमार्थ कार्य किया है अथवा कर रहा है। वह प्रतिभाशाली, सम्पन्न एवं विद्वान बनता है। योगः कर्मनिष्ठ जीवन अपनाने की प्रेरणा देती है जिससे स्वयं परमार्थ वृत्ति का सृजन होता रहता है। हमें प्रसन्नता है कि वैद्य श्री रविशंकर जी सात्विक भावना के साथ समाज कल्याण तथा जन सेवा में जुटे रहे।

संस्कृत तथा आयुर्वेद के विद्वान तथा राजदरबार के गुरू होते हुए भी अभिमान रहित व्यक्तित्व को देखकर मन को सन्तोष होता था। मुझे ऐसे व्यक्ति के साथ बाल्यकाल से ही अध्ययन में साथ रहने का शुभावसर मिला। हम जब सन् 1935 से ही चतुर्थ या पन्चम श्रेणी में साथ पढ़ते थे तो मुझे उस बाल्यकाल की कुछ स्मृतियाँ आज भी स्मृति पटल पर विद्यमान है कि श्री रविशंकर जी भट्ट को स्कूल छोड़ने व लेने के लिये 2 बैलों वाली भैल आती थी। जाते समय उस सवारी की मोजी खाने के लिए प्रायः सभी विद्यार्थियों का मन लालायित रहता था। प्रायः सभी विद्यार्थियों को सप्ताह में एक बार बैठने का अवसर भट्ट जी प्रदान करते थे। क्योंकि उस समय श्रेणी में करीब 20–22 विद्यार्थी ही होते थे। समय निकलता गया और हम लोग शास्त्री व आचार्य श्रेणी में आ गये। हमें औषधि परिचय के लिए अध्ययनकाल में वन में एक दो बार ले जाया जाता था। सन् 1945–46 की बात है कि हम भिषग्वर श्रेणी तथा आचार्य श्रेणी के विद्यार्थी जो संख्या में करीब 20–25 होंगे, रणथम्भोर किले के आगे शैलेश्वर महादेव के जंगल में जा रहे थे तो रास्ते में एक मृगराज (शेर) सोते हुए मिले, उसे देखकर हमारे साथ जो शिकारी भी साथ थे, डर गये। वे पीछे भागने लगे तो हमारे साथ वैद्यराज श्री कल्याण प्रसाद जी काली पहाड़ी वाले थे। जो शिकारी से कुल्हाड़ी लेकर आगे हो गये और विद्यार्थियों को हल्ला मचाने का आदेश दिया तो सभी ने हल्ला मचाया तथा पत्थर फेंकने लगे। ऐसे में शेर डरकर भाग गया। लड़के बहुत डर गये। उस समय श्री रविशंकर जी ने भी एक शिकारी से कुल्हाड़ी लेकर वैद्य जी के साथ हो गये और इस स्थिति में रविशंकर जी को, वैद्य जी ने बड़ा बहादुर विद्यार्थी बताया और कॉलेज में वापिस आने पर उनको सम्मानित किया गया।

अध्ययनशील होने के कारण भट्ट जी श्रेणी में आदर के पात्र समझे जाते थे। तथा अपने साथियों को भी जटिल स्थलों पर समझाकर सहयोग प्रदान करते थे। भट्टजी अपने गरीब विद्यार्थियों

को पुस्तकें तथा अन्य प्रकार के सहयोग देते रहते थे। यह प्रायः उनका स्वभाव था। बड़े घर के होने के नाते उनको कोई द्रव्य देने में कोई कठिनाई नहीं होती थी। आपके पिता की मृत्यु कब हुई यह मुझे सन् आदि स्मरण नहीं है किन्तु जयपुर के महाराजा मानसिंह के दरबार में मैंने अनेक बार इनको पालकी में बैठकर आगे तथा पीछे 4–4 चड़ी व चोपदारों के साथ जाते देखा है। विदित हुआ है कि महाराजा स्वयं इनको अभ्युत्थान तथा भेंटकर सम्मानित करते थे। दशहरा तथा अन्य विशेष समारोहों पर यह महाराजा मानसिंह की सवारी में चड़ी चोपदारों के साथ पालकी पर विराजमान होकर आगे चलते थे। इसी रूप में मैंने श्री विद्यानाथ जी ओझा को जाते देखा है। यह क्रम महाराजा मानसिंह के राजस्थान के राज प्रमुख होने तक चला। महाराजा मानसिंह की मृत्यु के बाद महाराजा भवानी सिंह के जन्मदिन तथा अन्य अवसरों पर उनके दरबार में जाते देखा है। किन्तु अब वह पालकी का क्रम समाप्त हो गया था वह अपनी कार में ही जाते थे।

स्मृतियाँ अनेक हैं किन्तु विस्तारभय से एक–दो स्मृतियों का उल्लेख ही उचित समझता हूँ। एतावता समय के प्रभाव से भट्टजी ने आयुर्वेद विभाग में सर्विस स्वीकार की। क्योंकि उस समय विभाग के डायरेक्टर श्री प्रेमशंकर जी शर्मा थे। जिनने इनसे कहा कि आपकी योग्यता के अनुरूप आप एक औषधालय के चिकित्सक के रूप में राज्य सेवा करते रहें। मैं भी राज्य सेवा में था, समय निकलता गया। किन्तु भट्ट जी महाराज अधिक सेवा नहीं कर सके क्योंकि राज्य सेवा में अवांछित व्यक्तियों का भी आदर करना पड़ता है। ऐसे में यह बर्दास्त नहीं कर सके। तथा करीब 3 वर्ष बाद ही सेवा से अलग हो गये। उस समय धन्वन्तरि औषधालय के अध्यक्ष पर पर हमारे गुरूवर्य स्वामी जयराम दास जी महाराज, जो स्वामी लक्ष्मी रामापीठ के आचार्य थे, स्वामी जी ने भट्ट जी को बुलाकर कहा कि आप धन्वन्तरि औषधालय में अन्तरंग विभाग के अध्यक्ष पद को ग्रहण कर सेवा प्रदान करें। भट्ट जी ने यह पद स्वीकार कर अपने 60 वर्ष की आयु तक इस पद के अनुरूप कार्य किया। तथा भर्ती होने वाले अनेक जटिल रोगों से रोगियों को स्वास्थ्य प्रदान किया। कहना न होगा कि जयपुर में भट्ट जी महाराज का उच्चकोटि के विद्वानों में नाम था। श्री स्वामी लक्ष्मीराम पीठ व लक्ष्मीराम शोधसंस्थान के द्वारा शालव तथा नकद पुरस्कार से आपको सम्मानित किया गया। 'श्री धन्वन्तरि औषधालय समिति' के द्वारा आपको धन्वन्तरि त्रयोदशी पर 3 बार सम्मानित किया गया।

इनकी दानशीलता का एक उदाहरण देकर मैं अपने लेख को समाप्त करने जा रहा हूँ। भट्ट जी की मृत्यु के कुछ माह पूर्व ही मेरे पास एक विद्यार्थी आया जो संस्कृत में शिक्षा शास्त्री की कक्षा में प्रवेश लेने के लिये उसके पास सात हजार रुपये की कमी थी, जिसे वह पूर्ण नहीं कर पा रहा था। मेरे एक परिचित व्यक्ति ने मेरे पास भेजा। मैंने उसको दो हजार रूपये दिये, किन्तु पाँच हजार रुपये के लिए उसने बहुत अनुनय विनय के साथ कहा मुझे भी उस पर कुछ सहायता कराने के लिए मन में भाव उत्पन्न हुआ तो मैंने उसे दूसरे दिन बुलाया। वह समय पर आ गया और मैं उस विद्यार्थी को लेकर भट्टराजा रविशंकर जी के पास गया। दैवयोग से उसका अच्छा संस्कार था तथा मुझे भी यह श्रेय मिलना था। भट्ट जी महाराज ने तुरन्त उस को पाँच हजार रुपये दे दिये। वह बहुत भावविभोर होकर भट्ट जी महाराज के चरण स्पर्श किये तथा मेरे भी चरण स्पर्श किये। वह अपने मन्तव्य में सफल हो गया।

भट्ट जी महाराज का दिनांक 11 अगस्त 2012 को देहावसान हो गया। मेरे हृदय पर भट्ट जी महाराज की उदारता का बहुत भार रहा तथा वह दृश्य आज भी मेरे स्मृति पटल पर अंकित है। मेरे

ऐसे उदारचेता सुहृदय पर राजदरबार में सम्मानित तथा सहनशीलता तथा निरभिमानता की प्रतिमूर्ति भट्ट श्री रविशंकर जी परिवार सहित हम सभी मित्रगणों को दुःखी कर स्वर्ग सिधार गये। इस मार्ग पर जो उत्पन्न होता है एक दिन अवश्य जाना पड़ता है। **''मरणं प्रकृतिशरीरिणाम्''** के सिद्धान्त को स्मरण कर भट्ट जी की आत्मा को शाश्वत शान्ति प्रदान करने के लिये भगवान से प्रार्थना करते हैं। इसी सुख दुःख स्मरणाश्रलि से उनको सादर नमन।

एक और विशेष बात की ओर ध्यान दिलाना चाहूँगा कि मैं इन्हीं के पुण्य प्रताप से इनके ज्येष्ठ पुत्र श्री लोकेश जी उच्चस्तरीय एडवोकेट की श्रेणी में तथा द्वितीय पुत्र राकेश जी इंजीनियर की श्रेणी में उच्च पदासीन है। जो मेरे पूर्व लेखानुसार परमार्थ तथा लोकार्थ सेवा से प्रतिभाशाली व सम्पन्न है।

वैद्य फूलचन्द शर्मा
झालाणीयों का रास्ता, किशनपोल बाजार, जयपुर

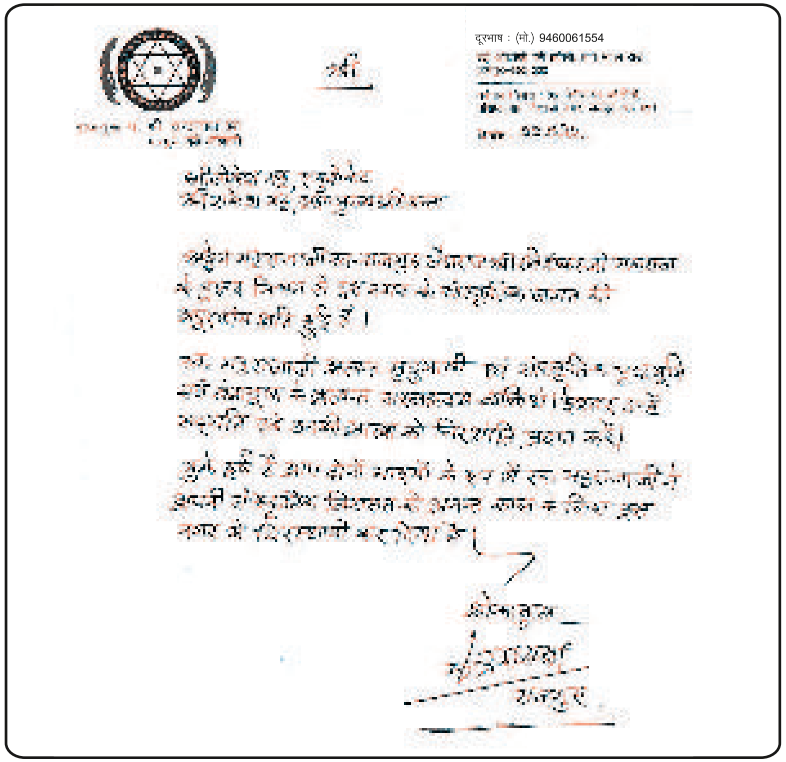

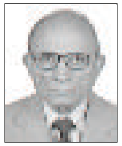

राजगुरू कथाभट्ट
डा. सुबोध चन्द्र शर्मा
स्ट्रक्चरल इन्जिनीयर सलाहकार
राजस्थान में प्रथम कम्प्यूटर सेंटर एस आर जी डेटा सेंटर के संस्थापक
पूर्व प्राध्यापक मालवीय क्षेत्रीय अभियांत्रिक महाविद्यालय, जयपुर
अमेरिका के विभिन्न संस्थानों में उच्च पदों पर कार्यरत रहे

डा. रविदत्त शर्मा
सुविख्यात भौतिक शास्त्री, अन्तरिक्ष वैज्ञानिक, अमेरिका के नासा तथा भारत के इसरो में वर्षों तक कार्यरत रहे, नेशनल रिमोट सेंसिंग एजेंसी को सेट अप करने वाले, राजस्थान में प्रथम कम्प्यूटर सेंटर एस आर जी डेटा सेंटर के संस्थापक, वर्तमान में अमेरिका में सोफ्टवेयर आर्किटेक्ट पद पर कार्यरत।

डा. गोविन्द चन्द्र शर्मा
कृषि वैज्ञानिक :– अमेरिका के अल्बामा विश्वविद्यालय में प्रोफेसर के पद पर कार्यरत, फेडरल अमेरिकी सरकार के वर्षों तक कृषि सलाहकार रहे हैं

परम आदरणीय राजगुरू भट्टराजा जी महाराज
श्रीमान रविशंकर जी आयुर्वेदा चार्य की पुण्य स्मृति में उनके परम मित्र राजगुरू कथा भट्ट स्व. श्री जगदीश चन्द्र जी साहित्याचार्य के पुत्रों की स्मरणांजलि

यह कहना तो लगभग असंभव है कि हम श्रीमान भट्टराजा जी महाराज को कब से जानने लगे क्योंकि बचपन से ही हमने तो उन्हें परिवार के सदस्य रूप में ही जाना। पिताजी के निकटतम मित्रों में थे और कोई दिन से ऐसा होता था कि दोनो आपस में न मिलें। धन्वन्तरी औषधालय से लौटते हुय शाम को भट्टराजा जी महाराज पिता श्री के पास पधारते थे। उसी समय स्व. पूज्य भी भवदत्त जी ओझा, पूज्य पितृव्य श्री मोहन लाल जी साहब, पूज्य वकील साहब मदल लाल जी, वकील साहब श्री भगवती दत्त जी, पूज्य महन्त श्री वैद्यराज जी राधेश्याम जी, पूज्य महन्त श्री नारायणदास जी आदि मित्र मण्डली में से कोई न कोई तथा अन्य मित्र भी पधारते थे और पिताश्री की बैठक में लगभग नित्य ही अच्छी गोष्ठी सी हो जाती थी। अनेक प्रकार के हँसी मजाक व चाय पानी आदि के साथ ही विजया, जर्दा आदि के दौर भी चलते। पूज्य भट्टराजा जी महाराज इन सभी व्यसनों से अछूते थे परन्तु मित्रता में प्रगाढ़ थे। अत्यन्त उन्मुक्त हास्य एवं प्रसन्नता के उस समय को जब हम याद करते है तो एक बात जो स्पष्टता से उभर कर सामने आती है वह यह है कि इतनी उन्मुक्तता होते हुये भी सब कुछ सहज नैसर्गिक था। कहीं भी कोई बनावट व दुराव–छिपाव नहीं था। केवल शिष्टाचार नहीं था, आंतरिक सौहार्द्र था।

हमने महाराज का व्यवहार अत्यन्त औपचारिक अवसरों पर भी देखा। जहाँ आवश्यकता होती थी औपचारिकता और शिष्टाचार का पूर्णतः निर्वाह होता था। परन्तु उसके बाहर पुनः वही सहज सौम्य बालवत् सरलता ही मिलती थी।

पिताजी और उनकी मित्र मण्डली के साथ सभी त्यौहारों ओर अवसरों का पूरा आनन्द लेते। मकर सक्रान्ति पर सबसे ऊंची छत पर एकत्रित होकर घण्टो पतंगबाजी होती। छोटे–बडे का कोई भेद तब दिखाई नही देता पर पूरे शिष्टाचार के साथ।

वर्षा के मौसम में एकाधिक बार वन गोष्ठियों का आनन्द उठाते। चरण मंदिर, आथूणी का कुण्ड, सागर, झालाना का मंदिर आदि कई स्थानों पर हम बच्चों को भी साथ जाने का अवसर मिलता और बडी या छोटी गोष्ठियों का आयोजन होता।

आदरणीय भट्टराजा जी महाराज संगीत की कई विधाओं से पारंगत थे। सितार अत्यन्त सुन्दर बजाते थे और उनका गायन भी उत्कृष्ट था। हमारे पिताश्री उतने कलाकार तो नहीं थे पर सुनने का शौक भट्टराजा जी महाराज के बराबर ही था। भट्टराजा जी महाराज की प्रेरणा से वे भी सितार खरीद कर लाये, तानपुरा भी लाये पर वह शौक अधिक ऊँचाईयों तक नहीं पहुँच पाया। इसका अर्थ यह नही कि सुनने के शौक में किसी प्रकार की कमी आई। जब भी अवसर मिलता दोनो साथ संगीत सुनने के शौक में किसी प्रकार की कमी आई। जब भी अवसर मिलता दोनो साथ संगीत सुनने जाने का यत्न करते। कभी महाराज के यहा कभी स्व. शशिमोहन जी के यहां या अन्य कहीं संगीत गोष्ठी होती। बाद में फिर कई दिनों पर उसकी चर्चा रहती। आकाशवाणी पर हर शनिवार प्रसारित राष्ट्रीय कार्यक्रम को दोनों ही अपने अपने स्थान पर नियम से सुनते। फिर जब भी मिलते उसकी लम्बी सभालोचना होती। आकाशवाणी का वार्षिक रेडियों संगीत सम्मेलन तो एक उत्सव की तरह होता। बाद में जब 1964–65 के लगभग जयपुर में श्रुति मण्डल और तरूण कलाकार परिषद का आरंभ हुआ तो दोनो ही उसके बडे नियमित सदस्य बने। इसके कार्यक्रमों में जाने के लिए कई दिन पहले से कार्यक्रम बनता।

राजगुय के कर्त्तव्यों में भी महाराज और पिताश्री साथ ही होते। एक दूसरे की सहायता, समालोचना चलती रहती और सिटी पैलेस जाने का कई बार साथ रहता। दशहरे के अवसर पर सिटी पैलेस से दशहरा कोठी तक जुलूस जाता था। इस जुलूस में दोनो अपनी अपनी पिंजल / पालकी में छडीदार चौबदारों के लवाजमें के साथ सम्मिलित होते थे यह हमनें बहुत बचपन मे देखा था। धीरे धीरे यह आयोजन कम होत होते सिटी पैलेस के भीतर तथा दशहरा कोठी पर खेजडी पूजन तक सीमित रह गया। नाम का जुलूस ही होता हैं। महाराजा साहब और राजगुरू, सामंत सरदार अब अपनी अपनी कारों से अलग अलग दशहरा कोठी पहूँच जाते हैं।

अंतिम वर्षो में पिताश्री बापूनगर वाले बंगले में रहने लग गयें थे। इस कारण दूरियाँ केवल भौतिक रूप से ही बढ़ी। सौहाद्र के स्तर की निकटता सद अक्षुण्ण रही। पिताश्री अक्सर शाम के समय जौहरी बाजार चांपावत जी के मंदिर स्थित अपनी बैठक में पधारते थे। ओर जब भी पधारते आते ही पहले बाजार की तरफ की खिड़कियाँ खोल देते थे, ताकि भट्टराजा जी महाराज औषधालय से पधारें तो उन्हें पता चल जायें। यदि कुछ दिन भेंद न हो तो कई बार वे महाराज की हवेली पर ही चले जाते थे और लम्बी बैठक के बाद ही वापस घर (बापूनगर) लौटते।

मित्रता की यह श्रृंखला 1992 में पिताश्री के निधन से आहत हुई। महाराज को जो आघात लगा उसका वर्णन करना हो तो हमारे लिए कठिन है ही परन्तु पिता की छाया हटते ही एक विशालह्रदय की छाया मिलना कितना सुखदायी हो सकता है कि इसका वर्णन भी सरल नहीं हैं।

पिताश्री राजगुरू कथाभट्ट जगदीश चन्द्र जी के निधन के बाद उनके राजगुरू पद के कुछ कर्त्तव्य मुझ (सुबोध चन्द्र) पर आ गये। इन कर्त्तव्यों का निर्वाह असम्भव था यदि परमपुज्य राजगुरू भट्टराजा जी महाराज का सतत् मार्गदर्शन हर समय उपलब्ध नही होता। छोटी छोटी बातों के लिए भी उनसे बार बार दिशा निर्देश मांगता रहा। कब क्या पहनना है, क्या लेकर जाना है, किससे किस प्रकार बात करनी है। ऐसे अनेकानेक प्रश्न झुंझला देने की सीमा तक उनसे पूंछता हर समय पूरे वात्सल्य के साथ मार्गदर्शन मिलता। बार बार गलती करने पर भी काई उलाहना या शिकायत नहीं। जब भी संभव होता साथ लेकर जाते।

महाराज जगतसिंह जी के निधन के पश्चात् उनके लिए बैठक में श्रीमद्भगवद्गीता की कथा करने का कार्य अचानक मुझ पर आया। पहली बार इतने बडे लोगों के सम्मुख इस प्रकार की कथा करने का दायित्व आने से मेरा कुछ सीमा तक घबराना तो क्षम्य था पर मुझ लगा कि लगभग उतनी ही घबराहट पूज्य भट्टराजा जी महाराज को भी थी। उस घटना में उनके वात्सल्य की प्रत्यक्ष दर्शन हुआ। स्वयं मुझे साथ लेकर कथा स्थल लिलीपूज पधारे ओर कई प्रकार से आवश्यक मार्ग निर्देशन दिया। उसके बाद जब कथा उनके संतोष के योग्य हो गई तो आशीर्वाद भी दिया। उनके उस वात्सल्य को भुलाना संभव नहीं हैं।

अन्तिम दिनों में महाराज ने बहुत शारीरिक कष्ट सहन किया। चलने फिरने की रूकावट उनकी प्रकृति के लिए बहुत दुःखदायी थी। इसके उपरांत भी उनके सहज प्रसाद गुण में कोई कमी नहीं आई। उनके छोटे छोटे मजाक और व्यंग्य अंत तक शारीरिक विषाद में विजयी रहे। महाराज का निधन एक लम्बे युग का अवसान कर गया। उनकी स्मृतियाँ एक बडी पूंजी है जिसे उनकी ही श्री चरणें में प्रस्तुत करके हम गौरवान्वित हैं।

- राजगुरू कथाभट्ट **डा. सुबोध चन्द्र शर्मा**
- **डा. रविदत्त शर्मा**
- **डा. गोविन्द चन्द्र शर्मा**

"चांपावत जी का मन्दिर", 1154, जौहरी बाजार, जयपुर

न हि देहभृताशक्यं त्यक्तुं कर्माण्यशेषतः।
यस्तु कर्मफलत्यागी स त्यागीत्यभिधीयते।।
(श्रीमद्गवद्गीता 18।11)

निस्सन्देह किसी भी देहधारी प्राणी के लिये समस्त कर्मों का परित्याग कर पाना असम्भव है। लेकिन जो कर्मफल का परित्याग करता है वह वास्तव में त्यागी कहलाता है।

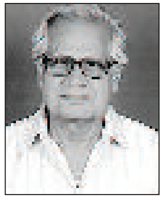

पण्ड्या केशव लाल शर्मा
एम.ए. (राजनीति शास्त्र)
एम.ए. (हिन्दी साहित्य)

राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर में सन् 1964 से 1999 तक सेवाऐं देकर सहायक कुल सचिव पद से सेवा निवृत्त।

सर्व आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण समाज, जयपुर के संस्थापक अध्यक्ष।

एक विभूति

मैं अपने जीवन के करीब 70 बसन्त पार कर चुका। कई महान् सन्तों व सज्जन पुरुषों के सम्पर्क में आया। कईयों से बहुत कुछ सीखा। कई आध्यात्मिक महानुभावों के दर्शन भी किये और लगातार सम्पर्क में भी रहा। उनमें से एक मेरे श्रद्धेय मातुल स्वर्गीय भट्टराजा रविशंकर जी भी थे। जो कुछ माह पूर्व ही प्रकृति के क्रूर हाथों द्वारा हमसे छीन लिये गये।

मामैसा उच्च कोटि के संस्कृत भाषा के विद्वान होते हुए भी सहज तार्किक व आधुनिक विचारधारा से सम्पन्न थे। उन्हें जयपुर के महाराजा ने भी 1945 में पूर्वजों से प्राप्त भट्टराजा की उपाधि की मान्यता विधिवत् प्रदान की थी। उन्हें महाराजा सवाई मानसिंह जी साहब बहादुर, जयपुर की ओर से म्येयो कॉलेज, अजमेर में पढ़ने की अनुज्ञा प्राप्त हुई थी लेकिन वे नहीं गये क्योंकि भाभीसा (मातुश्री) अकेले रह जाते और यदि वे अजमेर में राजकुमारों के साथ पढ़ने जाते तो पता नहीं कैसे संस्कार मिलते। वे यह भी कहते थे कि मैंने अपने बचपन में जो भी नैतिक शिक्षायें प्राप्त की वह सब भाभीसा (मातुश्री) की ही देन थी।

उनका नो वर्ष की छोटी आयु में यज्ञोपवीत संस्कार हुआ और तभी से सुबह चार–साढ़े चार बजे बिस्तर छोड़ देना और स्नान, नित्यक्रिया, सन्ध्यावन्दन करना। यह क्रम उनकी दिनचर्या का अन्त तक रहा। प्रातः भ्रमण भी अक्षुण्य रहा।

महाराजा संस्कृत कॉलेज, जयपुर उस समय भारत में वाराणसी के संस्कृत कॉलेजों के समकक्ष समझा जाता था। संस्कृत कॉलेज, जयपुर के अध्यापक भारत के मूर्धन्य विद्वानों की गणना में थे। ऐसे विद्वानों के सम्पर्क में रहकर उन्होंने अपना अध्ययन किया और शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त आपने आयुर्वेदिक कॉलेज, जयपुर से पाँच वर्षीय कोर्स कर भिषगाचार्य की उपाधि प्राप्त की। इस प्रकार संस्कृत के ज्ञान के साथ ही अच्छे चिकित्सक का कार्य अपनाया।

उन्हें गवर्नमेन्ट आयुर्वेदिक कॉलेज, जयपुर में अध्यापन कार्य मिला था लेकिन स्थानान्तरण की परेशानी से उन्होंने त्यागपत्र दे दिया और जयपुर के धन्वन्तरि आयुर्वेद चिकित्सालय में मुख्य चिकित्सक सेवा निवृत्ति तक रहे।

मैं तो उनसे करीब तेरह साल छोटा था। अक्सर उनके मित्रों को भी देखता था। उनके मित्र भी उन्हीं के समान विद्वान, साहित्यकार, कवि व संगीत के शैकीन थे। मैं तो मामैसा के सामने जाने से भी झिझकता था। ऐसे विद्वान् व नीति–निपुण व्यक्ति के सामने जाने से ही डरता था। मामैसा ने संगीत की शिक्षा भी प्राप्त की थी। संगीत कला संस्थान, जयपुर से उन्होंने बी.म्यूजिक (सितार) में किया था। मैं अपनी आयु के तीस वर्ष के बाद ही मामैसा से बात करने की हिम्मत कर पाया। उसके

बाद तो मैं जब भी उनसे मिलने जाता, काफी विचार विमर्श होता। उनसे मैंने संस्कृत का अभ्यास व कई आध्यात्मिक ज्ञान की बातें समझी।

मामैसा बहुत ही नेक और मिलनसार व्यक्ति थे व अपने औदुम्बर समाज में सभी जगह उनका भरपूर आदर था। जाति का कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं था जो उनके सम्पर्क में न रहा हो। सबसे प्रेम से व्यवहार करते थे। चिकित्सक होने के नाते किसी के भी बीमार होने की जानकारी मिलते ही तुरन्त पहुँचते थे और जितना बन पड़ता दवा आदि का प्रबन्ध भी करते थे। मुझसे तो उनका गहरा आत्मीय सम्बन्ध था और कभी उनसे मिलने में तीन–चार दिन की देरी भी हो जाती तो तुरन्त मुझे बुलाने के लिये उनका फोन आ जाता था। वे अपने पुराने आत्मीय मित्रों को भी खूब याद करते थे। उनके प्रिय मित्र भी भवदत्त ओझा (व्याकरणाचार्य), प्रोफेसर वैद्य श्री रंगनाथ जी शर्मा, श्री कथा भट्ट जी महाराज (राजगुरु) वैद्य श्री चिदानन्द जी, वैद्य श्री फूल चन्द्र जी शर्मा, वैद्य श्री मदन लाल जी ''प्रसून'', श्री मनमोहन जी गुप्ता, प्रो. पं. नवलकिशोर जी कांकर आदि मुख्य सम्पर्क सूत्रों में थे।

उनके गुणों के विषय में क्या लिखूँ। कितने ही पेज भर सकता हूँ। फिर भी कुछ रह ही जायेगा। इतना ही लिखना काफी है कि उनकी याद मेरे दिल से जाने का नाम ही नहीं लेती। जितना भूलने की कोशिश करता हूँ उतनी याद बनी ही रहती है। इनकी धर्मपत्नी श्रीमती सुशीला बाई (पू. मामीसा) का निधन 2002 में होने के बाद वे बहुत टूट गये थे। पिछले तीन–चार साल से थोड़े अस्वस्थ थे लेकिन फिर भी उन्होंने अपना दैनिक कार्य स्वयं ही किया। किसी से पानी का गिलास भी नहीं मांगा। दिनांक 11 अगस्त, 2012 को 87 वर्ष की आयु प्राप्त कर वो इस संसार से हमें छोड़कर चले गये। ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ उन्हें परम् प्रभु परमात्मा अपने चरणों में उच्चत्तम स्थान प्रदान करे।

ॐ शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

• **पण्ड्या केशव लाल शर्मा**
7 ट 26, जवाहर नगर, जयपुर

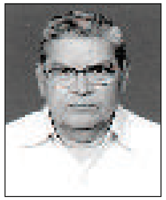

श्री सुरेश चन्द्र नारायण रणा
एम.ए., बी.एड., डी.सी.ई., सेवानिवृत शिक्षक – गुजरात राज्य शाला पाठ्य पुस्तक मण्डल के एकादश एवं द्वादश कक्षा की संस्कृत पुस्तकों का सम्पादन कार्य किया, दसवीं कक्षा के गुजराती विषय के परामर्शक रहे।

भट्ट राजा वैद्य रविशंकर जी शास्त्री के निधन से हमारी जाति के धर्म, साहित्य एवं आयुर्वेद के एक मूर्धन्य विद्वान की क्षति हुई है। जिसकी पूर्ति होना असम्भव है। ईश्वर इनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।

लोकेश कुमार भट्ट
बी.ए., एल.एल.बी.
एडवोकेट
राजस्थान सिविल न्यायालय, जयपुर

अविस्मरणीय संस्मरण

मेरे पूजनीय पिता श्री (भट्टराजा रविशंकर जी शास्त्री) एक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व से सम्पन्न एवं प्रकाण्ड विद्वान थे। उनके जीवन काल में उनका व्यक्तित्व पूरे समाज को, परिवार को गौरवान्वित करने वाला था। जयपुर महाराजा सवाई मानसिंह जी द्वारा उनको "राजगुरू भट्टराजा जी" की वंशानुगत उपाधि से अलंकृत किया गया था। राज दरबार से उनको जयपुर महाराज साहब की साल–गिरह, रक्षा बन्धन, दशहरा एवं कई बड़े बड़े समारोह में आमन्त्रित किया जाकर उनको राजगुरू के रूप में सम्मानित किया जाता था।

पांच वर्ष की उम्र में ही उनके पिता का सानिध्य उनके जीवन काल में ही समाप्त हो चुका था, ऐसी स्थिति में भी उनका जीवन इतना प्रतिभाशाली बनना, उच्च शिक्षा प्राप्त करना, समस्त उत्तरदायित्व को विद्वतापूर्ण ढंग से निभाना, कठिन से कठिन समस्या आने पर भी उनका अपने विवक से ही निर्णय लेना, यही उनके जीवन की विशेषता थी। जब मैं उनके इस व्यक्तित्व को देखता हूँ तो मुझे आज भी अपने पिता के सानिध्य की आवश्यकता महसूस होती है। माता–पिता की कमी का अहसास नित्य प्रतिदिन होता है, ऐसा लगता है कि मानो मेरा साया,....शक्ति ही समाप्त हो गयी।

संगीत कला के प्रति भी उनका अत्यधिक लगाव था। शास्त्रीय संगीत में उनकी विशेष रूचि थी। सितार–वादन में उनको दक्षता थी। रागों को पहचानने में उनको विशेष योग्यता हासिल थी। संगीत क्षेत्र में उनकी प्रतिभा का कोई जवाब नहीं था। श्रुति मंडल की संगीत सभाओं में उनका आना जाना–बना ही रहता था। हम भी उनके साथ जाया करते थे। बडे–बड़े कलाकारो को सुनना, उनके द्वारा गायी बजाई जा रही रागों को तुरन्त पहचान लेना उनके ज्ञान की पराकाष्ठा थी। कई बार सुप्रसिद्ध सितार–वादक पंडित शशि मोहन जी भट्ट के प्रोग्राम घर पर भी आयोजित होते थे उसमें उनके सारे मित्र–मंडल सुनने के लिये घर पर ही पधारते थे एक बहुत ही आनन्द का संगीतमय माहौल बन जाता था।

एक बार सितार–वादन का कार्यक्रम घर पर रखा गया जिसमें पंडित शशि मोहन भट्ट जो सुप्रसिद्ध सितार वादक थे उनको बुलाया गया तबले पर संगत उस्ताद हिदायत खां ने की थी। पंडित श्री शशि मोहन भट्ट सितार पर राग बिहाग बजा रहे थे, राग की विलम्बित गत 16 मात्रा बजाते समय करीब आधा घंटे तक तिहाई–पर तिढाई लगाकर राग बिहाग का प्रदर्शन कर रहे थे उस समय मेरे पिता श्री की विद्वता का एक अभूतपूर्वरूप देखने को मिला, उन्होंने पंडित शशि मोहन भट्ट से कहा कि आप "तीन ताल" 16 मात्रा में हर मात्रा से तिहाई प्रदर्शित कर रहे हैं अर्थात एक मात्रा से 16 मात्रा तक दो मात्रा से 16 मात्रा तक, 3 मात्रा से 16 मात्रा तक अर्थात इस प्रकार 16 मात्रा तक

तिहाई प्रदर्शित कर सम पर आ रहे हे। यह सुनकर श्री शशि मोहन जी के आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा वो कहने लगे कि इतने समझदार श्रोताओं का मिलना संगीत के लिये बड़े ही गौरव की बात है। पूरी संगीत सभा का वातावरण आनन्द मय हो गया।

मैने सितार वादन की शिक्षा अपने पिता श्री से ही प्राप्त की, आकाशवाणी जयपुर से सितार वादन में करीब 15 वर्ष पूर्व "ओडिशन टैस्ट" पास किये जाने पर उनको अत्यधिक प्रसन्नता हुयी। जब "आकाशवाणी कलाकार" के रूप में मेरा पहली बार "सितार–वादन" का प्रसारण, आकाशवाणी जयपुर से हुआ उस समय मेरे माता–पिता को बेहद प्रसन्नता हुयी। इस तरह से उनमें ऐसी कितनी ही प्रतिभायें थीं जिनको मैं उनसे प्राप्त नहीं कर सका।

आज उनकी कमी का अहसास, वर्ष भर पूरा होने पर भी मेरे ह्रदय से नहीं जा पा रहा है। माता–पिता के बिना यह जीवन अनाथ सा महसूस होता है।

लोकेश कुमार भट्ट
एडवोकेट

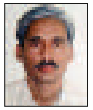

सामन्त कुमार भट्ट
बी.ए.
जगदीश चौक, गणगौर घाट रोड़,
उदयपुर

मातुल प्रेम

शब्दातीत सरल जिज्ञासा,
व्यक्त हुई जो बिना शब्द ही,
सरल गटल मय समाधान भी
प्राप्त हुआ जो अनाया सही।।

जाने कितने तारे टूटे,
नभ के विस्तृत नीलाअचल से
जाने क्या कहता फिरता है
व्यथित सभी रण अपने मुख से।।

भीव ह्रदय का स्मृति अंक में,
मुखरित होता प्रति पल निर्मल,
आशा सिंचित मन आल्हादित
मधुमय मातुल प्रेम ''सुपरिमता''।।

राकेश कुमार भट्ट
बी.ई. (सिविल)
अतिरिक्त मुख्य अभियन्ता,
राजस्थान आवासन मण्डल,
जयपुर

"पितृदेवो भव"

उपाध्यायान् दशाचार्य आचार्याणां शतंपिता।
सहस्त्रं तु पितृन् माता गौरवेणातिरिच्यते।।

(मनु. 2 ।145)

शास्त्रों में आया है कि दस उपाध्यायों से बढकर है एक आचार्य और सौ आचार्यो से बढ़कर है एक पिता और एक पिता से एक हजार गुना बढ़कर है एक माता। तैत्तिरीयोपनिषद में भी कहा गया है "मातृदेवो भव" "पितृदेवो भव" और "आचार्यदेवो भव"।

महर्षि दयानन्द सरस्वति ने भी संतान के दायित्व के संदर्भ में अपने संदेश में कहा है कि "अपने माता पिता की सेवा करना ही व्यक्ति का प्रथम धर्म है।"

भारत की उज्जवल संस्कृति और सभ्यता प्रेरित करती है कि हमें अपने माता पिता और वृद्धजनों को समाज में ऐसा सम्मान देना चाहिये कि आने वाली पीढ़ियां भी इसका अनुसरण करके स्वयं को गौरवान्वित महसूस करें।

अभिवादन शीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविनः।
चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्।।

(मनु. 2 ।121)

जो मनुष्य नित्य बड़ों को प्रणाम करता है और अनकी सेवा करता है उसके आयु, विद्या, यश और बल चारों बढ़ते है।

"पिता" शब्द मात्र से व्यक्ति में रक्षाकवच, रक्षक, मार्गदर्शक और अन्य कितने ही सुरक्षा के भाव उत्पन्न होते हैं। मैं अपने आपको सौभाग्यशाली मानता हूं कि मुझे मेरे पिताजी का सानिध्य जीवन में 56 वर्ष से अधिक समय तक मिला। इस दौरान विभिन्न रूपों में उन्हे देखा। बचपन में जहां कठोर अनुशासनप्रिय एवं प्यार से ओतप्रोत पाया, किशोरावस्था में अपने अध्ययन के दौरान मार्ग की कठिनाइयों को दूर करने वाले पिता के रूप में पाया। शिक्षा पूर्ण करने पर एक कुशल मार्गदर्शक के रूप में पाया। तो विवाहोपरान्त एक कुशल प्रशासक की तरह गृहस्थी के समन्वयक के रूप में पाया। अपने निजी जीवन में उन्हें किसी भी प्रकार के व्यसन नहीं थे, संभवतः इसी के परिणामस्वरूप हम बच्चों में भी वही व्यसन से मुक्त संस्कार ही मौजुद हैं।

उन्हे सन् 1930 में सर्वप्रथम पिताश्री स्व. भट्टराजा विष्णु शंकर जी के निधन की असह्य पीड़ा का सामना करना पड़ा। मात्र 4) वर्ष की अल्पायु में पिता का साया उठ जाने के उपरान्त मातुश्री स्व.

मालती बाई तथा पूज्य दादी जी के सानिध्य में बड़े हुए। उनके बालिक होने तक ''ठिकाना भट्टराजा जी'' ''कोर्ट ऑफ वार्डस'' के अन्तर्गत रहा। सन् 1973 में उनको मातृ शोक लगा। सन् 1996 में उनके बड़े दामाद श्रीमान रमेश चन्द्र जी आचार्य के निधन का बड़ा आघात लगा।

शनैः शनैः वो अपने कार्यों को करते हुए वृद्धावस्था की ओर अग्रसर हो रहे थे तथा हम लोग अधेड़ावस्था में प्रवेश कर रहे थे। अचानक वर्ष 2002 में हमारी मातुश्री का हृदयगति रूक जाने से देहावसान हो गया। परिवार के हम सभी लोग बहुत ही विचलित हो गये थे। किन्तु कुछ समय पश्चात् हमाने अपने पिता में एक बड़ा परिवर्तन पाया। वो एक ओर एकान्त एवं मातुश्री के वियोग में अन्दर ही अन्दर अकेलेपन के शिकार होते जा रहे थे तथा दूसरी ओर हम लोगों को मातुश्री की कमी का अहसास भुलाने के लिये प्रयन्तशील होते जा रहे थे। तात्पर्य यह है कि पिछले दस वर्षो से वो पिता एवं माता दोनों का प्यार देने में सक्षम रहे थे।

सन् 2009 में उन्हें उनकी सबसे लाड़ली सुपुत्री श्रीमती बेला बेन की असामयिक मृत्यु ने झकझौर कर रख दिया। वो टूटते जा रहे थे। उनकी दोनों बड़ी बहनों की मृत्यु से भी वो उदास हो गये थे। वृद्धावस्था में इस तरह के वज्रपात सहन करने के लिये भी बहुत हिम्मत की आवश्यकता होती है। स्वास्थ्य में गिरावट का दौर भी प्रारम्भ हो चुका था। एक उम्र विशेष के उपरान्त व्यक्ति के शरीर मस्तिष्क एवं दिल के अनुसार कार्य कर पाने की क्षमता में कमी आ जाती है और कार्य क्षमता में गिरावट उत्पन्न हो जाती है। इंसान चाह कर भी अपने आप को पूर्व की भांति सक्रिय नहीं रख पाता है। किन्तु इस अवस्था में सबसे बड़े साथी के रूप में उनकी पूजा पाठ करने की आदत (शिव एवं शक्ति की उपासना) तथा धार्मिक एवं साहित्यिक पुस्तकों (श्रीमद् भगवद्गीता, धर्म सिंधु, रामायण, कल्याण आदि एवं अन्य कई आयुर्वेद से सम्बद्ध) की रूचि शक्ति प्रदान करने में महत्वपूर्ण रही। शारीरिक दुर्बलता के साथ–साथ दृष्टि कमजोर होने से बहुत व्याकुलता महसूस होती थी। किन्तु उनका उच्च मनोबल जीवन पर्यन्त रहा। जिसके कारण उम्र के अंतिम पड़ाव तक उन्हें किसी पर आश्रित नहीं होना पड़ा। यह हमारे लिये प्रेरणादायी है। स्वयं ही अपनी दिनचर्या का पालन कर लेते थे।

किन्तु दिनांक 11 अगस्त 2012 की वो संध्या में जीवन में कभी नहीं भूला सकता जब काल ने कोई प्रतीक्षा नहीं की और उनका प्राणान्त हो गया। हम लोग बिलखते रहे अपने आपको बेसहारा महसूस करते रहे। किन्तु एक बार शरीर से प्राण निकलने के बाद लौटकर नहीं आये और शरीर पंचभूत में विलीन हुआ। मैं तो ईश्वर से यही प्रार्थना करता हूं कि मुझे जन्म जन्मान्तर तक ऐसे ही पिता प्राप्त होवें।

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं श्शोचितुमर्हसि ।।
(श्रीमद्भगवद्गीता 2। 27)

ईश्वर उनकी आत्मा को शान्ति प्रदान करें।
ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः ॐ शान्तिः

राकेश कुमार भट्ट

श्रीमती अमिता भट्ट
बी.ए., एल.एल.बी.

भट्टराजा जी की हवेली,
1098, चूरूकों का रास्ता,
चौड़ा रास्ता, जयपुर

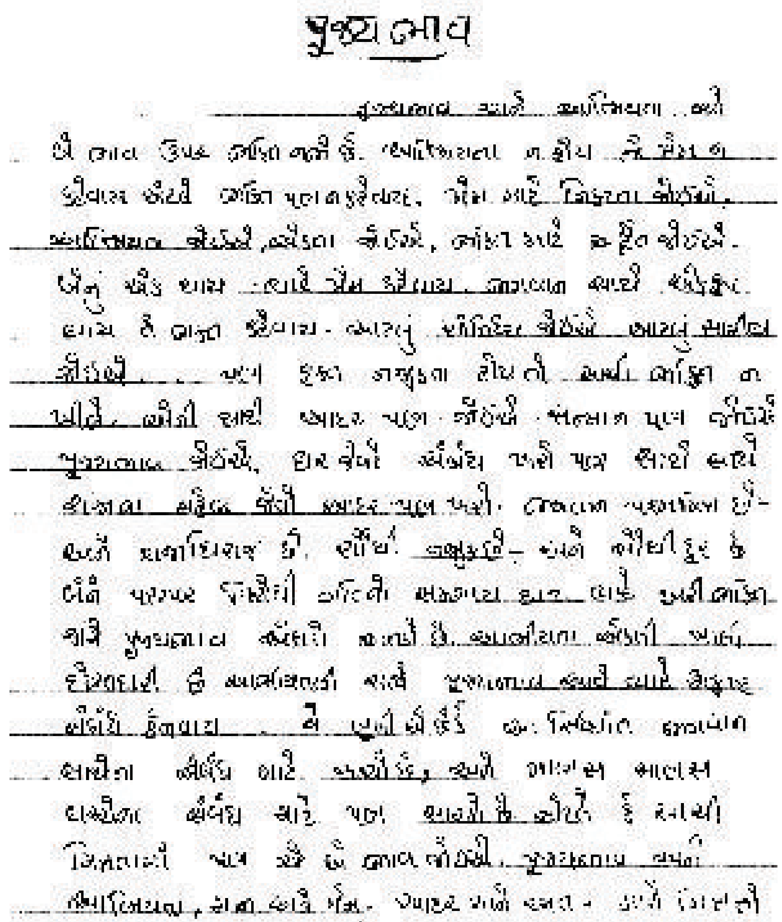
પૂજ્ય ભાવ

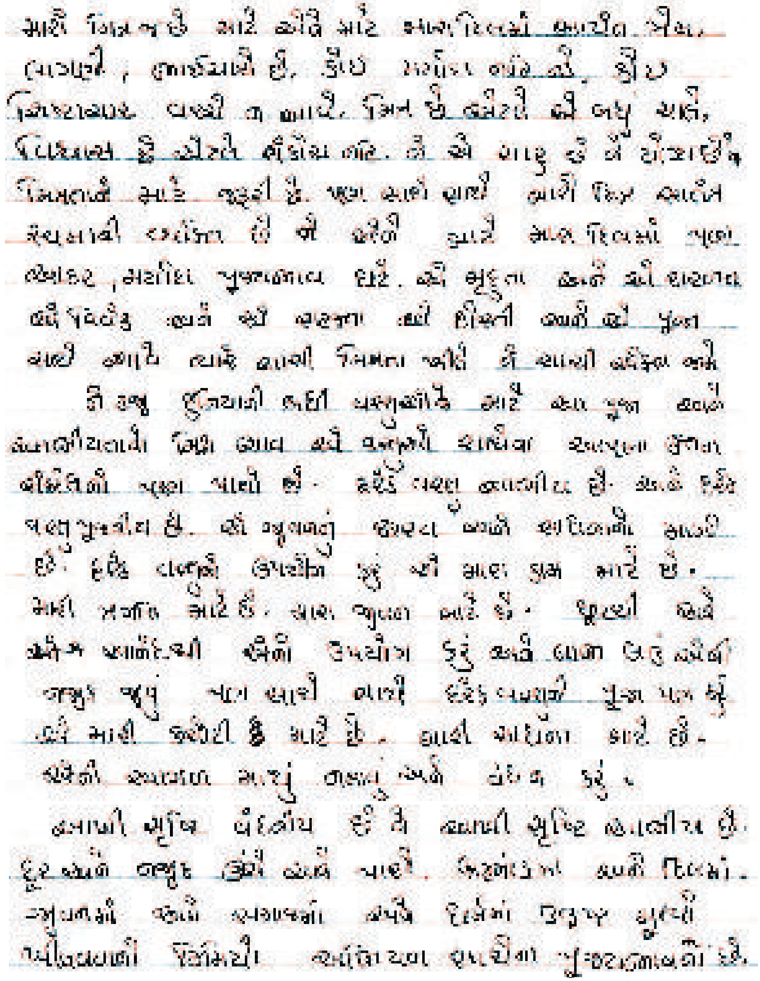

मैनें चिड़िया को घोंसला बनाते देखा है। मैनें उसे दाना चुगते और झट से आकाश में उड़ते देखा है। मैं चाहता हूँ कि चिड़िया मुझे भी यह सब सिखाए की किस तरह जमीन से जुड़े रहकर आकाश में उड़ा जा सकता है, कि किस तरह असीम आकाश में उड़ने का एहसास एक घोंसले में रहकर भी जीवित रखा जा सकता है।

छाया चित्र वीथी

सिटी पैलेस जयपुर द्वारा आयोजित
सवारी के अवसर पर।

सिटी पैलेस जयपुर द्वारा आयोजित
सम्मान समारोह के अवसर पर।

सिटी पैलेस जयपुर में आयोजित समारोह के अवसर पर।

सिटी पैलेस जयपुर में पूर्व महारानी भट्टराजा जी से आशीर्वाद प्राप्त करते हुए।

सिटी पैलेस जयपुर में पूर्व महाराजा सवाई भवानी सिंह जी आशीर्वाद प्राप्त करते हुए।

स्वामी लक्ष्मीराम पीठ के द्वारा विद्वत्सम्मान तत्कालीन माननीय सांसद श्री गिरधारी लाल भार्गव से प्राप्त करते हुए (वर्ष 2007)।

सिटी पैलेस जयपुर में सम्मानित श्री असरानी (फिल्म कलाकार) के साथ भट्टराजा रविशंकर जी

रक्षाबंधन के अवसर पर बड़ी बहन स्व. श्रीमती राज कुवंर बाई के साथ।

सर्व आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण समाज, जयपुर के स्थापना दिवस पर दीप प्रज्जवलन करते हुए।

स्व. श्रीमान् गोविन्द लाल जी शास्त्री (श्वसुर) इन्दौर

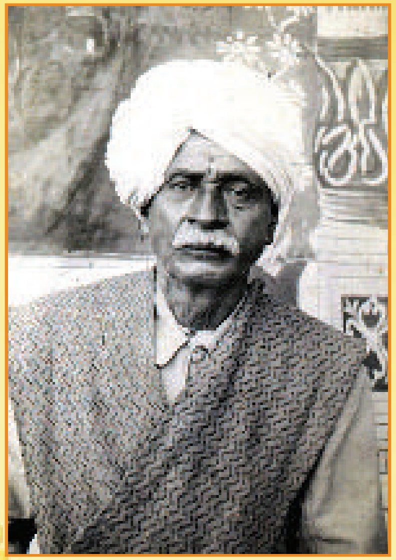

स्व. डॉ. आनन्दी लाल रणा (नानाजी) उज्जैन

भट्टराजा रविशंकर जी बचपन में अंगरक्षकों के साथ

भट्टराजा रविशंकर जी बचपन में बहन
स्व. गोविन्द कुवंर बाई (उदयपुर) तथा लंझा बाई के साथ

स्व. भट्टराजा विष्णु शंकर जी (पिताजी)

स्व. भट्याणी श्रीमती मालती बाई (माताजी)

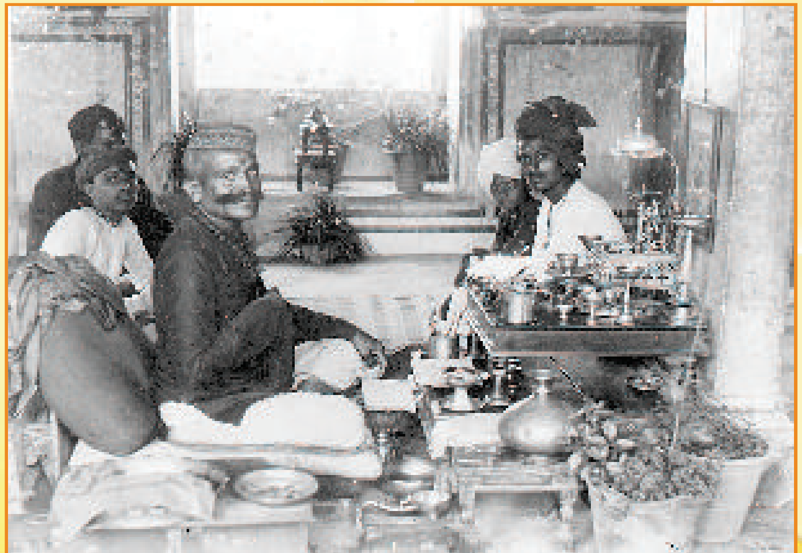

स्व. भट्टराजा शिव शंकर जी (रविशंकर जी के दादाजी) पूजन करते हुए।

सिटी पैलेस जयपुर में पूर्व महाराजा सवाई भवानी सिंह जी के राज्याभिषेक के अवसर पर।

भट्टराजा रविशंकर जी पुत्रों के यज्ञोपवित के अवसर पर (वर्ष 1967)

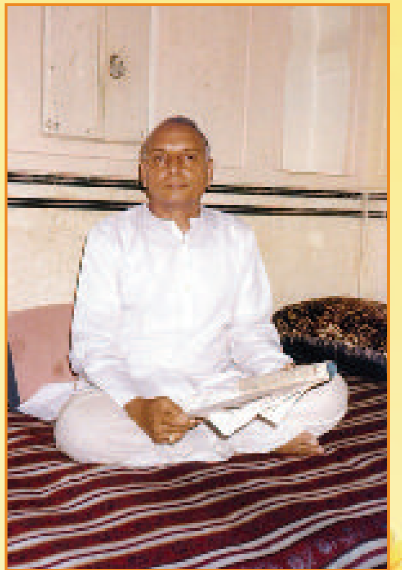

भट्टराजा रवि शंकर जी

राजगुरू स्व. कथा भट्ट
श्रीमान् जगदीश चन्द्र जी के साथ

लोकेश कुमार (पुत्र), केशव लाल जी (भान्जे), देवांशु (पौत्र) भट्टराजा रविशंकर जी, दिशा (गोद में पौत्री), स्व. मनमोहन लाल जी गुप्ता (मित्र), आशुतोष (पौत्र) बायें से दायें

लोकेश कुमार (पुत्र), मयूरी बेन (पुत्रवधू), आशुतोष (पौत्र), निधि (पौत्री), भट्टराजा रविशंकर जी, दिशा (पौत्री), श्रीमती सुशीला देवी (नयना बेन), देवांशु (पौत्र), अमिता बेन (पुत्रवधू) (बायें से दायें)

ग्रह शान्ति के अवसर पर भट्टराजा रवि शंकर जी एवं धर्मपत्नि श्रीमती सुशीला देवी (नयना बेन)

दीपावली के दिन लक्ष्मी पूजन के अवसर पर

यज्ञ के अवसर पर

श्रीमती शैफाली विनोद भट्ट (दोहिती), श्रीमती उर्मिला रमेश आचार्य (ज्येष्ठ पुत्री)
श्री राजेश आचार्य (दोहिता), स्व. श्रीमान् रमेश चन्द्र शंकर लाल जी आचार्य (दामाद) – अहमदाबाद

सुश्री मिताली (दोहिती), श्री गौरव (दोहिता), श्रीमती गीता, स्व. श्रीमती प्रभा (पुत्री), श्रीमती मुदिता (दोहिती)
श्रीमान् गिरधारी लाल लाड़लीलाल जी भट्ट (दामाद) – कोटा

श्री राकेश भट्ट, श्री लोकेश भट्ट (सुपुत्र), श्री आशुतोष भट्ट (सुपौत्र), भट्टराजा रविशंकर जी,
श्रीमती मुक्ता (पौत्रवधु) श्रीमती मयूरी लोकेश भट्ट, श्रीमती अमिता रोकश भट्ट (पुत्रवधु)

श्री दुष्यन्त पण्ड्या (दामाद), चि. उद्धव, श्री आशुतोष भट्ट (सुपौत्र),
श्रीमती मुक्ता (पौत्रवधु), श्रीमती निधि दुष्यन्त पण्ड्या (सुपौत्री)

सुश्री दिशा भट्ट (सुपौत्री), श्री देवांशु भट्ट (सुपौत्र), श्रीमती प्रियंका (पौत्रवधु), श्रीमती अमिता, श्री राकेश

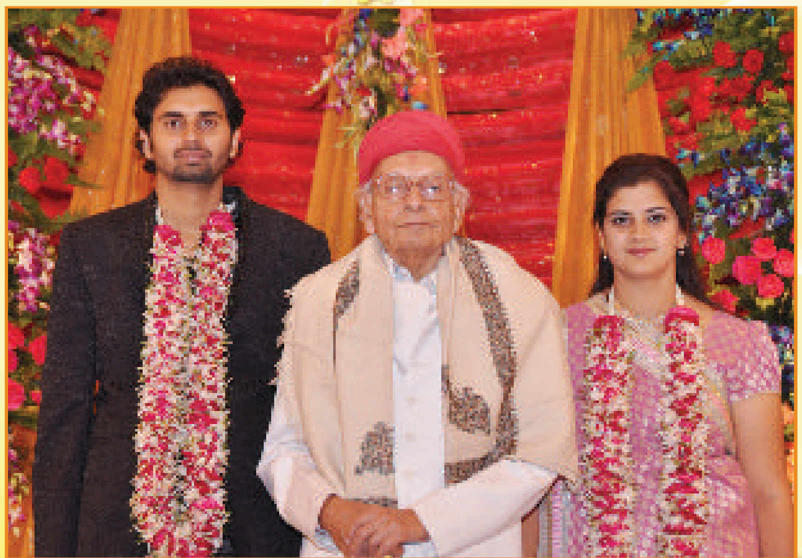

श्री देवांशु भट्ट (सुपौत्र), भट्टराजा रविशंकर जी, श्रीमती प्रियंका (पौत्रवधु)

श्री अखिलेश शास्त्री, श्री सत्यकाम शास्त्री, श्री श्रीवत्स (इंदौर), श्री राकेश, श्री भट्टराजा रविशंकर जी,
श्री देवांशु, श्रीमती प्रियंका, श्रीमती अमिता, श्रीमती संगीता, श्रीमती, सुश्री मिमांसा, श्रीमती शिल्पा

आशुतोष (पौत्र), लोकेश कुमार (पुत्र), निधि (पौत्री), प्रभा बेन (पुत्री), मयूरी बेन (पुत्रवधू),
दिशा (पौत्री), भट्टराजा रविशंकर जी, अमिता बेन (पुत्रवधू), उर्मिला बेन (पुत्री) राकेश कुमार (पुत्र) बायें से दायें

श्री भट्टराजा रविशंकर जी अपने भांजे – भांजियों के साथ
श्रीमती पद्मा, श्री केशव लाल जी, श्री जय कुमार (उदयपुर), श्रीमती मुदिता, श्रीमती सज्जन देवी, श्रीमती उर्मिला बेन, श्री सामन्त कुमार (उदयपुर), श्री राकेश,
श्री भट्टराजा रविशंकर जी, श्री देवांशु, श्रीमती प्रियंका, श्रीमती अमिता, श्रीमती कोकिला (वडोदरा), श्रीमती चन्द्रप्रभा (भटिंडा), सुश्री दिशा, श्रीमती सावित्री देवी

भट्टराजा वैद्य श्री रविशंकर जी शास्त्री द्वारा रचित कुछ लेख

''श्री श्यामला [illegible]''

नमामि प्रभुं श्यामलां [illegible],
[illegible]।
[illegible] विशाल,
[illegible] ॥1॥

भावार्थ : [illegible]

[illegible],
[illegible]।
सुधा सिन्धु [illegible],
[illegible] ॥2॥

भावार्थ : [illegible]

[illegible],
[illegible]।
[illegible],
[illegible] ॥3॥

भावार्थ : [illegible]

ॐ शान्ति.....

[illegible]

(मालवा आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण मंडल, इन्दोर की अर्द्ध वार्षिक पत्रिका 'कलश' के वर्ष 2004 के प्रवेशांक के अंक में प्रकाशित)

स्वस्ति पन्थामनुचरेम

भारतीय धर्म, शिक्षा एवं संस्कृति का दिशा निर्देश वेदों से होता है। वेदों में सामाजिक परिवेश में सर्वप्रथम मानसिक सद्भावना एवं सदाचरण का निर्देश दिया गया है कि सविता (परमात्मा) हमारी बुद्धि को सद्भावना एवं सदाचरण की ओर प्रेरित करे। अर्थात् ईश्वर से वैभव, धन, पराक्रम आदि की अभीप्सा न करके बुद्धि को सत्कर्म में प्रेरित करने की कामना की गई है। ''स्वस्ति पन्थामनुचरेम'' इस ऋचा में भी ऐसी ही सद्भावना की इच्छा अभिव्यक्त है। स्वस्ति का अर्थ है शाश्वत कल्याण—अविनाशी मंगल। ऐसा मङ्गल जो कभी नष्ट नहीं हो। क्षणिक न हो स्थिर हो। अर्थात् स्थिर और शाश्वत लौकिक तो संभव नहीं। अलौकिक एवं पारमार्थिक ही शाश्वत हो सकता है। लौकिक तो क्षणिक ही होगा।

यज्ञादि के द्वारा भी लोक कल्याण को लक्ष्य में रखते हुए स्तुति की जाती है

प्रजापते न त्वदेतान्यन्यो विश्वारूपाणि परिता बभूव

यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम्। यजु.

अर्थात् हे परमात्मन् आप के अतिरिक्त कोई कल्याण कर शक्तिशाली नहीं है अतः हम जिस त्वसितकामना से यजन कर रहे हैं वह सब हमें प्राप्त हो जिससे कि हम शक्तिशाली एवं सामर्थ्यवान हो सकें। इसी दृष्टि से सन्ध्योपासना के लिये वेद में स्पष्ट आदेश दिया है— ''अहरहः सन्ध्यामुपासीत'' इस आदेश के लिए यहाँ और क्या को कोई स्थान नहीं है क्यों कि मनुस्मृति आदेश है। हम देखते है सन्ध्या में भी सविता (परमात्मा) की उपासना है। सूर्योपासना है। पूर्ण स्वस्थ रहने के लिये सूर्य की प्रार्थना की जाती है। ''आरोग्यं भास्करादिच्छेत्''। मन, शरीर यदि स्वस्थ रहेंगे तो ही हम सदाचरण कर सकेंगे। सूर्य से हमें ऊर्जा (शक्ति) उपलब्ध होती है—

''सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च''

अर्थात् संसार में जितने भी स्थावर या जङ्गम पदार्थ है, उनकी आत्मा सूर्य है सूर्य के अभाव में कोई भी सत्ता नहीं रह सकती है। इसी प्रकार उपस्थान के मन्त्र में—

तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतम् इत्यादि

अर्थात् वह सूर्य (परमात्मा) देव हितं—लोक कल्याण के लिए हमें शक्ति दें मात्र स्वकीय स्वार्थ के लिये नहीं। वह ऐसी शक्ति जिससे हम सैकड़ो वर्ष जीवें, सैकड़ो वर्ष देखते रहें, सुनते रहें, बोलते रहें और कभी दीन दुःखी न हो। अदीन होने की भी प्रार्थना की जाती है क्यों कि दीन होने पर तो पराधीन हो जाते हैं और पराधीन होने पर लोक कल्याण कैसे होगा?

इस प्रकार जब निजी विश्व की सत्कामना है तो प्रार्थना करते हैं कि—

''विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव यद् भद्रं तन्न आसुव।''

अर्थात् हे परमात्मन्, सब के पूज्य देव! हमारे दुरित (अश्रद्धा, अविवेक, दुराचार, असंयम

आदि) दोषों को दूर करें एवं जो भद्र (विवेक, श्रद्धा, संयम सदाचार प्रकृति) हमें उपलब्ध करायें।

इस प्रकार सत्यार्थगामिता, सदाचार सम्पन्नता हमारे जीवन में अविच्छिन्न बनी रहे।

इसी उदात्त भावना को प्रेरित करते हुए हमारे धार्मिक एवं सामाजिक संस्कार निश्चित किये गए हैं। सभी संस्कार श्रुति, स्मृति पर आधारित हैं। ''निषेकादि श्मशानान्तो वेषां वै मन्त्रत-क्रियाः'' मनु.। जैसे मुख्य संस्कार में ब्राह्मण के लिए उपवीत है। आजकल वह संस्कार ही प्रायः समय पर नहीं किया जाता। ब्राह्मण के लिए आठ से सोलह वर्ष के भीतर संस्कार करने का आदेश है किन्तु अधिकतर परिवारों में विवाह के समय नाममात्र को उपवीत किया जाता है। उस समय तक व्रात्य संज्ञा हो जाने से वह व्यक्ति उसका अधिकारी ही नहीं रहता। इसके अतिरिक्त उस समय तक पाश्चात्य शिक्षा–संस्कृति का वह पूर्णतया अभ्यस्त हो जाता है। यही नहीं अपितु इन हमारे संस्कारों को रूढ़ी मात्र समझते हुए इनके प्रति आस्था रहित हो जाता है। कोई भी संस्कार समय पर किया जाए तभी उसकी सार्थकता एवं सफलता रहती है। ''यत्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्'' के अनुसार जीवन में स्थिरता भी उस संस्कार की रहती है।

आज हमारे समाज में बच्चों को बाल्यकाल से ही पाश्चात्य संस्कृति का पाठ पढ़ाया जाता है तो उन बच्चों में हमारी पारम्परिक धार्मिक एवं सांस्कृतिक आस्था कैसे पनप सकती है? छोटे बच्चे जब थोड़े समझने या बोलने लगते हैं उसी समय उनको उनके जन्मदिन पर केक काटना सिखाया जाता है ''हैप्पी बर्थ डे टू यू'' का मन्त्र रटाया जाता है, फुग्गारे उड़ा कर, मोमबत्ती बुझाकर उनका मनोरंजन किया जाता है। उनको जन्मदिन पर देवपूजन, अभिषेक आदि से सर्वथा वंचित रखा जाता है तथा वैदिक उपदेश ''मातृ देवो भव, पितृदेवो भव, आचार्य देवो भवः'' आदि शब्दों की उन के कान में युवा होने तक भी गूंज नहीं आती सर्वथा अनभिज्ञ रहते हैं।

इसके अतिरिक्त वेश भूषा में टाई का आदी बना दिया जाता है जो कि अन्य धर्म का चिन्ह है। शिखा रखना, धोती पहनना तो आज कल उपहास का विषय बन गया है।

अतः हमें गम्भीरता से विचार करना चाहिये कि आधुनिक सन्तति जो कि पाश्चात्य संस्कृति में व्यस्त रही है वह कैसे भारतीयता की ओर झुकने लगे? क्यों कि हमारे धर्म और दर्शन में चतुर्वर्ग को महत्व दिया गया है जबकि पाश्चात्य संस्कार में केवल अर्थ और काम के प्रति लोग आकर्षित हैं और करना चाहिये कि भावना है। दर्शन को ही लें तो भारतीय संस्कार में दर्शन का अर्थ है ट्रान्सफार्मेशन जो कि आन्तरिक विचार को पलट देता है। जबकि पाश्चात्य साहित्य में दर्शन का अर्थ है इन्फार्मेशन अर्थात् केवल जानकारी प्राप्त करना; अन्तर्दर्शन नहीं। यह मौलिक दृष्टि भेद है। इसी पाश्चात्य दृष्टि से भौतिकता और विलास की चकाचौंध में व्यक्ति स्वकीय कर्तव्य परिवार के प्रति उत्तरदायित्व एवं आत्मीयों के प्रति संवेदनशीलता निष्ठा से ही विमुख हो जाता है। भारतीयता का प्राचीन सूत्र 'वसुधैव कुटुम्बकम्' सिद्धांत सदा के लिये समाप्त हो जाता है। मानव मात्र के प्रति संवेदना तो दूर की बात है अपितु स्वकीय माता पिता एवं पूर्वजों के प्रति भी संवेदना नहीं रहती।

अतः भावी संतति को निजी संस्कृति एवं भारतीयता के प्रति जागृत रखने एवं कर्तव्य निष्ठ रखने के लिये प्रारम्भ से हमें अपने संस्कार में दृढ़ करने का प्रयत्न करना चाहिये क्योंकि एक बार सुदृढ़ हो जाने के अनन्तर पाश्चात्य धर्म संस्कृति का भी यदि ज्ञान प्राप्त किया जाए तो अनुचित न होगा। तभी ''स्वस्ति पन्थामनुचरेम'' वेद वाक्य की समाज में सार्थकता होगी।

आ.पू. मन्त्रराजा श्रीरविशंकरजी शास्त्री, जयपुर

(मालवा आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण मंडल, इन्दोर की अर्द्ध वार्षिक पत्रिका **'कलश'** के नवम्बर 2006 के अंक में प्रकाशित)

दास ब्रह्म भगवान जगदीश

सनातन धर्म में उपासना के दो बिन्दु निश्चित हैं। सगुण और निर्गुण। निर्गुण अर्थात् निराकार उपासना यद्यपि उत्कृष्ट है किन्तु वह उतनी ही कठिन भी। साधारणतया सगुण उपासना ध्यान गम्य है एवं निर्गुण ज्ञान गम्य। ध्यान में जब पूर्ण प्रौढ़ि प्राप्त हो जाए उसके अनन्तर ही ज्ञान गम्य निर्गुण उपासना सम्भव है।

वेद में स्पष्ट है कि ईश्वर यद्यपि निराकार है तथापि भक्तों के अनवरत ध्यान उपासना से वह साकार एवं साक्षात् भी है।

"अन्तरजाय मानो बहुधा विजायते यजुः।"
इसीलिये ध्यान में अनन्यत्य अपेक्षित है।

इसी आधार स्वरूप विग्रह निर्माण कर प्रतिष्ठा के साथ ध्यानोपासनादि किये जाते हैं। यही प्रक्रिया विश्वव्यापी है। विग्रह निर्माण निजी भावानुसार प्रस्थर या धातु से किया जाता है और प्रतिष्ठा की जाती है।

सभी स्थान पर उपास्य देव की प्रतिमायें प्रतिष्ठित हैं और वे प्रायः पाषाण की हैं किन्तु भगवान जगदीश की प्रतिमा जो उडीसा (पुरी) में है काष्ट की निर्मित है। यह भी युगों से इसी रूप में पूजी जाती है। ऋग्वेद में भी इसका संकेत उपलब्ध है।

"अदो यद्दारु प्लवते सिन्धोः, पारे अपूरुषम्।
तदा रमस्व दुर्हणे तेन, गच्छ परस्तरम्।।"

अर्थात् जो अपौरुषेय पुरुषोत्तम नाम वाले दारुमय देवता सिन्धुतीर में जल के ऊपर भासमान हैं। तुम उन्हीं दारुब्रह्म का अवलम्बन करो। समुपास्य दारुमय देवता की कृपा से तुम परम् उत्कृष्ट लोक को प्राप्त करो।"

इसमें भगवान को दारुमय और उत्कृष्टतम बताया गया है। इसीलिये इन्हें ब्रह्मदारु कहा गया है। इसे उल्टा करने पर दारुब्रह्म हो जाता है।

वैसे भी वेदों में ब्रह्म और ब्रह्माण्ड के निर्देश में उर्ध्वमूल मधः शाखमश्वत्थं प्राहुर व्ययम्" ब्रह्म और ब्रह्माण्ड को एक ऊपर मूल वाले पीपल वृक्ष से उपमित किया गया है तो भगवान को तो दारुब्रह्म ही होना चाहिए क्योंकि अश्वत्थ तो काष्टमय है।

वेद में जीवात्मा और परमात्मा की अवस्थिति भी रूपकमय एक वृक्ष पर बताई है और उसमें जीव को आसक्ति में लिप्त बतलाते हुए परमात्मा को अनासक्त केवल दृष्टा निरूपित किया है।

"द्वा सुपर्णा सयुजा सखाया, समानं वृक्षं परिषस्वजाते
तयोरेकः पिप्पलं स्वाछसिअनश्वनन्नन्यो अभिवाकशीत्रि"

अर्थात् एक वृक्ष पर दो पक्षी समान सख्य भाव से विराजमान हैं। उनमें एक उस वृक्ष के पत्रों, फलों का स्वाद लेता है और उसमें पूर्णतया आसक्त है जबकि दूसरा उसे न खाते हुए केवल उसे देख रहा है। याने जीवात्मा पूर्ण आसक्त है और परमात्मा केवल अनासक्त रहते हुए देखता है।

यह अनासक्त परमात्मा ही ब्रह्म है और इसी ब्रह्म से ब्रह्माण्ड प्रकाश में आया है। यही ब्रह्म ब्रह्मदारु अर्थात् दारुब्रह्म है जो अनासक्त भाव से पूरे श्रीक्षेत्रा या भैरवीक्षेत्रा में अवस्थित है। जो स्थितप्रज्ञ अनन्य भाव से तल्लीन होकर उपासना करते हैं वे उस दारुब्रह्म भगवान जगदीश का साक्षात्कार भी करते हैं। वह क्षेत्रा भैरवीचक्र या श्रीक्षेत्रा है। वहाँ अनन्यला और समानता है। भेद नहीं है। यही कारण है कि वहाँ कर्मेष्ठी ब्राह्मण हो या सफाई कर्मचारी समान रूप से साथ–साथ प्रसाद ग्रहण करते हैं।

भगवान पूर्ण यथार्थ साधारण लक्ष्य से अदृश्य हैं। इन्द्रियातीत मुक्तिविधायक रूप का दर्शन अनन्यत्व के बिना उपलब्ध नहीं हो सकता। "सर्वं खल्विदं ब्रह्म" यह उक्ति वहाँ उस क्षेत्रा के लिये पूर्णतया सार्थक है। अथर्ववेद की ऋचा हैः–

समानी भव्यः समितिः, समानी समानं व्रतः सहचित्तमेषाम्।
समानेन वो हविषा जुहोमि, समानं चेतो अभि संविशध्वम्।

इस प्रकार की समानता अन्य किसी क्षेत्रा में नहीं पाई जाती। भगवान की रथयात्राा में किसी धर्म, वर्ण, जाति आदि भेदभाव नहीं हैं। सभी लोग उनके रथ का सन्चालन बड़ी श्रद्धा के साथ करते हैं।

इस विवरण से यही सिद्ध है कि भगवान जगदीश की उपासना अनादि, अनन्त एवं अभिन्न है। भगवान को परमतत्व शुद्ध मन से ही जाना जा सकता है। ये दारुब्रह्म ही आदिब्रह्म है।

भट्टराजा वैद्य रविशंकर शास्त्री

(**सर्व आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण समाज, जयपुर** की पत्रिका **'औदुम्बर संदेश'** के वर्ष 2006 के प्रवेशांक के अंक में प्रकाशित)

आभार

हम सर्व आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण समाज, जयपुर, श्री आभ्यन्तर औदुम्बर केळवणी मण्डल, वड़ोदरा (गुजरात) राजस्थान ब्राह्मण महासभा, जयपुर, श्री प्रताप सिंह खाचरियावास, विधायक, नारायण सेवा संस्थान, उदयपुर, औदीच्य समाज, जयपुर, मालवा औदुम्बर ब्राह्मण मण्डल, श्री किरीट भाई म. आचार्य, मुम्बई, श्री रश्मिन र. आचार्य, राजकोट, श्री भास्कर भा. पण्ड्या, अहमदाबाद एवं अन्य सभी श्रद्धान्जलि अर्पित करने वालों के आभारी हैं जिन्होने हमें कठिन समय में सान्त्वना प्रदान कर कष्ट सहन करने में सहयोग प्रदान किया।

लोकेश कुमार भट्ट, राकेश कुमार भट्ट
आशुतोष भट्ट, देवांशु भट्ट
एवं समस्त भट्ट परिवार

आतम राम अवर नहि दूजा

दृश्य जगत के सम्बंध में कल्पना से रहित परम शांत परमात्म तत्व एक है और उसी को परमात्मा या परब्रह्म नाम से अभिहित किया जाता है। परब्रह्म एक है। परब्रह्म के "एकोऽहं बहु स्याम" – इस सङ्कल्प के अनन्तर प्रकृति का उद्‌भव हुआ। यह प्रकृति त्रिगुणात्मक है जबकि परब्रह्म निर्गुण है। इस त्रिगुणात्मक प्रकृति को ही माया या अविद्या कहा जाता है और यही संसार है। परब्रह्म के प्रभाव से प्रकृति चेतन है और इसी प्रकृति के चैतन्य (चिद्) रूप से संसार और प्राणीमात्र में चैतन्यता है। चेतना से ही संसार में सक्रियता है। यह सक्रियता ही परमात्मतत्व है।

परब्रह्म को इससे सर्वथा भिन्न नहीं कह सकते जैसे जल में तरंगों के द्वारा सक्रियता होती है तो यह नहीं कहा जा सकता कि जल भिन्न है और तरङ्ग भिन्न। जल के अभाव में तरङ्ग की सत्ता ही समाप्त हो जायगी। अतः तरङ्ग रूप भी जल ही है। इसी नियम के अनुसार त्रेतायुग के अन्त में तत्कालीन संसार के अशांत, उद्विग्न विप्लव को शांत करने हेतु भगवान राम प्रकट हुए। राम शुद्ध शांत करने हेतु भगवान राम प्रकट हुए। राम शुद्ध शांत स्वयं परब्रह्म है। साक्षात् अवतार हैं। चैतन्यस्वरूप सदेह चिद् घनानन्द रूप परब्रह्म हैं।

मनोऽभिरामं नयनाभिरामं
वचोऽभिरामं श्रवणाभिरामं
सदाभिरामं सततं भिरामं
वन्दे सदा दाशरथिं च रामम्। (आनन्द रामायण)

अर्थात् मन के सुंदर, शांतिप्रिय, नयन के लिये प्रत्येक देखने में अत्यंत सुंदर, वाणी में संतोषप्रद सुंदर, सुनने में बहुत मधुर और आनन्ददायक, हमेशा सुंदर, प्रतिक्षण सुंदर और रमणीय "क्षणे क्षणे यन्न नवतामुपैति तदेव रूपं रमणीयतायाः" – के अनुसार स्थायी संदर्भ के प्रत्यक्ष रूप भगवान राम को मैं प्रणाम करता हूँ।

इसी तरह रामरहस्योपनिषत् में–
"अग्निषोमात्मकं रूपं रामबीजे प्रतिष्ठितम्।
यथैव वटबीजस्थः प्राकृतश्च महाद्रुमः॥
तथैव रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्॥"

अर्थात् अग्निषोमात्मक विश्व राम (रा) बीज में प्रतिष्ठित है जैसे वट बीज में विशाल वट वृक्ष समाहित है। वैसे ही चराचर विश्व रामबीज में अवस्थित है।

राम शब्द का विश्लेषण करते हुए कहा गया है "रमन्ते योगिनो यस्मिन्निति रामः"
अर्थात् योगी लोग जिसके ध्यान में रमण करते है वही राम है

रामपूर्वतापीयोपनिषत् में–

"रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि
इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते"

राम पद का निर्वाचन करते हुए कहा है कि – सदा आनन्द स्वरूप चिदात्मा (चैतन्यमय) इस श्रीराम पद से स्वयं परब्रह्म का ही कथन होता है।

स्कन्द पुराण आदि पुराणों में स्पष्ट शब्दों में यही कहा गया है कि श्रीराम स्वयं परब्रह्म हैं इन्हें निरन्तर स्मरण करते हुए प्रणाम करना चाहिये।

श्रीराम एक उत्कृष्टतम मंत्र है निरन्तर जाप से एक विशिष्ट आत्मानुभूति होती है कि वह अनिर्वचनीय है।

श्रीराम शब्द में 'श्री' शब्द उस महाशक्ति का परिचायक है, जिससे इस सारे संसार का संचालन होता है त्रिगुणात्मक प्रकृति ही तो सञ्चालिका है। ब्रह्म तो पुरुष है उसके प्रभाव से प्रकृति में चैतन्य है। किन्तु पुरुष कुछ नहीं करता। तथापि पुरुष (ब्रह्म) का पूर्ण वैशिष्ट्य स्पष्ट करने हेतु मंत्र "श्रीराम जयराम जय जय राम" में 'श्री' शब्द का निर्वाचन केवल एक बार हुआ है, तथा 'राम' शब्द का तीन बार। इसके अतिरिक्त जय शब्द को भी तीन बार केवल 'राम' शब्द के साथ ही निर्वाचित किया गया है अर्थात् ब्रह्म ही निर्गुण निराकार ही ध्यान एवं ज्ञान का मुख्य बिन्दु स्रोत है।

प्रकृति के जल की तरङ्ग की तरह होने से उसके मिथ्या होने का भी एक दार्शनिक दृष्टिकोण है वह काफी अंश में उचित भी है किन्तु उसका चैतन्यमय प्रक्रिया एवं पूर्ण आन्दोलन के प्रभाव से उसी में तन्मय होते हुए सारे क्रियाकलाप के प्रति व्यक्ति स्वयं को ही कर्ता मान बैठता है ब्रह्म की तरफ उसकी दृष्टि ही नहीं जाती और दुःखी होता रहता है। अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते" – गीता

"चित्तेकर्तरि तत्रात्मा कर्तवाहं धियास्मृतः

–श्रीमद् भागवत

वास्तविकता यह है कि चेतन ही चित् बन कर स्वयं को दृष्य समझ दृष्टा दर्शन और दृश्य की त्रिपुटी के कारण भ्रमित हो जाता है अपने अधिष्ठान की वास्तविकता को भूलकर चित् शक्ति की क्रीड़ा को सत्य मानकर भ्रान्त हो जाता है। दृश्य और क्रियाशक्ति चित्त के ही कार्य हैं। गुणों को आधार बनाकर चित्त ही सब कार्य करता है। किन्तु आत्मा इससे सर्वथा भिन्न होते हुए भी इस भ्रम जाल में स्वयं को कर्त्ता मान बैठता है।

स्वरूप विस्मृति के कारण चेतन द्वैत रूप ले लेता है। स्वयं भगवान कृष्ण ने कहा है कि ब्रह्म केवल एक ही है। अर्थात् जीव और माया वह ब्रह्म ही जीव के रूप में विभक्त होते हुए दृष्टा और दृष्य का रूप में प्रतिबिम्बित होता है इन दोनों रूपों में एक को प्रकृति कह देते हैं जिससे कि संसार का संचालन होता है उसी ने कार्य और कारण रूप धारण किया है तथा दूसरा केवल ज्ञान

स्वरूप है जिसे 'पुरुष' कहते हैं। इस तरह प्रकृति क्रियाशील होती है एवं पुरुष केवल दृष्टा। वस्तुतः प्रकृति और पुरुष एक ही है।

भगवान कृष्ण ने इसलिये गोपिकाओं को समझाते हुए कहा है कि "मैं सब का उपादान कारण होने से सब की आत्मा हूँ इसलिये तुमसे मेरा कभी वियोग नहीं हो सकता है।" वास्तव में ब्रह्मरूप अधिष्ठान मे ही प्रकृति विभिन्न रूप में आधारित है अतः भिन्न रूप में भासित होते हुए भी प्रकृति को ब्रह्म से सर्वथा भिन्न नहीं कहा जा सकता है वह एक ही है।

इस प्रकृति के प्रभाव से विस्मृत (भ्रमित) जीव उस द्वारा निर्धारित विषयों में उलझता है और चक्रव्यूह मे घूमता रहता है।

'विषयान् ध्यायतश्चित्तं विषयेषु विषज्जते।
मामनु स्मरतश्चित्तं मय्येव प्रविलीयते" ॥ –श्रीमद् भागवत्

प्रकृति द्वारा सञ्चालित चित्त अधिकतर विषयों में ही उलझता रहता है किन्तु दृढ़ता पूर्वक अभ्यास करते हुए यदि व्यक्ति ब्रह्म का ध्यान और उपासना करता है तो वह मुझ मे ही विलीन हो जाता है।

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन् मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन् देहं स याति परमां गतिम्॥ –गीता

इसलिये परब्रह्म निर्गुण एवं निराकार है इस दृढ़ मान्यता के होते हुए भी निर्गुण ब्रह्म के पूर्ण ध्यान मे न होने से भगवान् 'राम' जो ब्रह्म का साक्षात् अवतार हैं उनका अभ्यासपूर्वक ध्यान करते हुए ज्ञान का उद्बोधन हो सकता है और मन भटकाव निरस्त हो सकता है।

भागवत में लिखा है–

एते चांशकलाः पुंसः कृष्णस्तु भगवान स्वयम्। –भागवत

यहाँ 'स्वयं' शब्द को कूटस्थ माना गया। अर्थात् 'स्वयं' शब्द केवल उस सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म के लिये ही वाच्य है अन्य के लिये नहीं, लेकिन हमारे भगवान राम के ब्रह्म स्वरूप में किसी तरह की न्यूनता नहीं मानी जाती।

अतः तरङ्ग रूपी प्रकृति के उद्वेग में सब भटके हुए है। इसलिये कई दार्शनिक एवं योगी लोग "ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या" अर्थात् ब्रह्म ही सत्य है, संसार झूठ है, इसके समर्थक व्यक्ति या योगी कुछ संसार में आसक्ति से थोड़ी मुक्ति अनुभव कर सकते हैं यदि आन्तरिक मन से इस प्रक्रिया में पूर्णतया संलग्न और आश्वस्त हैं तो।

कुछ आचार्यों का मत है कि ब्रह्म तो सत्य है किन्तु जगत् भी सत्य है क्योंकि प्रकृति में भी चेतना ब्रह्म से ही ली है। साथ ही जगत् को सत्य मानते हुए भी उसके प्रति आसक्ति और पूर्णतया उसमें लिप्त होने का वे भी विरोध करते हैं।

वास्तव में स्वस्थ ध्यान के लिये साकारता या सगुणता आवश्यक है। सगुण रूप भी परिपूर्ण है। इससे उस निर्गुण और निराकार में किसी प्रकार न्यूनता नहीं आती वह भी पूर्ण है और यह भी पूर्ण–

"पूर्णमदः पूर्ण मिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते" इत्यादि इस प्रकार अवतार जो होते है पूर्ण ब्रह्म का ही रूप होते हैं।

"अभ्युत्थानं धर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम्" —गीता

भरणः पोषणा धारः शरण्यः सर्वव्यापकः

करुणः षड्गुणैः पूर्णो रामस्तु भगवान् स्वयम् —महारामायण

उक्त पद्य भगवान राम के लिये अभिहित है। भगवान राम परब्रह्म परम पुरुष हैं।

पुरुषान्न परं किञ्चित् सा काष्ठा सा परा गतिः। —कठोपनिषद्

इस प्रकार कठ, मुण्डक, प्रश्नोपनिषद् आदि में पुरुष को सर्वोपरि सिद्ध किया है। उक्त उपनिषदों में किसी में छः किसी में 12 व किसी में 16 कलाएं निर्दिष्ट हैं किन्तु इससे भगवान राम की पूर्ण परब्रह्म की स्थिति में कोई न्यूनता नहीं आती "पूर्णात् पूर्णमुदच्यते।"

लोक में यह भ्रान्त धारणा कि भगवान राम 12 कलायुक्त हैं एवं भगवान कृष्ण पूर्ण 16 कलायुक्त है बिल्कुल सत्य नहीं है। भगवान राम का अवतार सूर्यवंशी राजा दशरथ के पुत्र रूप में हुआ था तथा सूर्य की पूर्ण बारह कला ही पूर्ण कही जाती है इससे अपूर्णता नहीं होती इसी प्रकार भगवान कृष्ण का अवतार श्री वसुदेव–देवकी के पुत्र रूप में हुआ था। वे चन्द्रवंशी थे और चन्द्रमा 16 कलायुक्त है इसलिये भगवान कृष्ण भी 16 कला पूर्ण है। इस तरह चन्द्रमा से सूर्य को न्यून सिद्ध नहीं किया सकता। इस तरह भगवान राम एवं भगवान कृष्ण में अपूर्णता या पूर्णता अर्थात् एक दूसरे से न्यून सिद्ध नहीं किया जा सकता।

इसके अतिरिक्त भगवान राम मर्यादा पुरुषोत्तम कहे जाते हैं क्यों कि उन्होंने समाज में मर्यादा की जो परम्परा होनी चाहिये उसे स्थायी रखने के लिये तदनुसार आचरण करते हुए धर्म परम्परा और मर्यादा के अनुसार स्वयं आचरण करते हुए समाज को उच्छृंखलता से बचाया। धर्म और मर्यादा की सुरक्षा के कारण ही उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहा गया। भगवान राम को धर्मरक्षण के कारण 'रामभद्र' नाम दिया गया है। इसके विपरीत कृष्णावतार में धर्म संस्कार का रूप युधिष्ठिर को माना गया है भगवान् कृष्ण को केवल लीला पुरुषोत्तम ही कहा गया है यही कारण है कि भगवान कृष्ण को केवल कृष्णचन्द्र नाम से ही निर्दिष्ट किया है कृष्णभद्र नहीं कहा गया। कला के भेद से पुरुष में भेद मान्य नहीं है अतः भगवान राम एवं भगवान कृष्ण का अभेद ही सिद्ध है न्यूनाधिक नहीं। उत्पत्ति, स्थिति निग्रह (निरोध एवं तिरोधान) और अनुग्रह इन पञ्चकृत्यों के निर्वाहक होने से दोनों में एकरूपता है। इस तरह श्री रामरूप से धर्मरूप और ब्रह्मरूप उभयविध वेदार्थ सार्थ होते है यह भी कारण है कि धर्ममूर्ति श्रीराम को 'रामभद्र' और ब्रह्ममूर्ति श्रीराम को 'रामचन्द्र' कहा जाता है। मर्यादा पुरुषोत्तम में मर्यादा पद का प्रयोग धर्माभिप्राय से है एवं 'पुरुषोत्तम' शब्द का प्रयोग ब्रह्माभिप्राय से है। भगवान राम में मर्यादा और लीला दोनों का सामञ्जस्य है यही कारण है कि उन्हें मर्यादा पुरुषोत्तम कहा जाता है। भगवान कृष्ण बाह्याभ्यन्तर लीला की प्रतिष्ठा होने से उन्हें "लीला पुरुषोत्तम" कहा जाता है। भगवान राम में सगुण और निर्गुण उभयविध ब्रह्मरूपता है। निर्गुण–निराकार और सगुण साकार में किसी

प्रकार भेद नहीं होता। सगुण–साकार में लीलासिद्ध पञ्चविध पञ्चदेव रूप माना जाता है।

"बहुधा विजायते" अर्थात् वह परमात्मा (ब्रह्म) यद्यपि अजन्मा और निराकार है तथापि आराधकों की निरन्तर अनन्योपासना से साकार रूप में भी प्रकट हो जाते हैं। उपासना में अनन्यत्व आवश्यक है।"

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः

तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः। गीता – 8 – 14

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।

तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।। गीता – 9 – 22

"मेरे तो गिरिधर गोपाल, दूसरा न कोई" – मीरा

इस प्रकार एक की ही अविच्छिन्न उपासना हो तो तभी अपने उपास्य का अन्तर्दर्शन संभव है उस स्थिति में उस निराकार की साकार अनुभूति हो सकती है।

भगवान राम सदैव परब्रह्म है। आत्मा भी कोई भिन्न वस्तु न होकर परमात्मा रूप है। वही परमात्मा परब्रह्म राम हैं।

इसी रूप को निदर्शित करते हुए महात्मा कबीर ने कहा है – "आतम राम अवर नहीं दूजा"

अर्थात् जो आत्मा है वही "राम हैं" वही परब्रह्म है। इससे भिन्न राम कोई दूसरा नहीं है।

—भट्टराजा वैद्य श्री रविशंकर शास्त्री, जयपुर

(**मालवा आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण मंडल, इन्दोर** की अर्द्ध वार्षिक पत्रिका **'कलश'** के मार्च 2007 के अंक में प्रकाशित)

तीन चीजें

माता, पिता और गुरु – सदा सम्मान करने योग्य होते हैं।
माता, पिता और जवानी – जीवन में एक बार मिलते हैं।
समय, मृत्यु और ग्राहक – किसी की प्रतीक्षा नहीं करते।
सच्चाई, कर्त्तव्य और मृत्यु – सदा याद रखनी चाहिये।
धन, स्त्री और भोजन – परदे योग्य होते हैं।
बुद्धि, चरित्र और हुनर – कोई चुरा नहीं सकता।
जर, जमीन और जोरू – भाई को भाई का दुश्मन बना देते हैं।
तीर कमान से, बात जुबान से और प्राण शरीर से – निकल कर वापस नहीं आते।

संकलन – डॉ. दिशा भट्ट

शंयोरभिश्रवन्तु नः

"ईश्वर शाश्वत शान्ति का हम पर निरन्तर सिंचन करता रहे।" यह प्रार्थना तो हम करते रहते हैं किन्तु शरीर से काम वैसे ही निरन्तर करते हैं जिससे अशान्ति हमारा पीछा नहीं छोड़ती।

किसी भी सद्भावना के साथ सदाचरण आवश्यक है, अन्यथा केवल भावना निरर्थक होती है। हम नित्य जप करते गायत्री मन्त्रा का किन्तु उसमें सविता देव से जो अभीप्स करते हैं वह कितनी सार्थक है।

तत् सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमही धियो यो नः प्रचोदयात्।

अर्थात् हे परमात्मन् आपके विशुद्ध तेजस्वरूप प्रेरणादायी दिव्य स्वरूप का हम ध्यान करते हैं उससे हमारी बुद्धि निरन्तर प्रेरित होती रहे। आप हमारी बुद्धि को असद् मार्ग से रोक कर तेजोमय शुभ मार्ग की ओर प्रेरित करें। उस प्रकाशमय पथ का अनुसरण कर हम आपकी उपासना करें और हमें उन्नति प्राप्त हो।" मन्त्र की यही भावना है कि हम ईश्वर को अनन्य भाव से उपासना करते हुए प्राप्त करें।

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।
तेषां नित्यामियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्।।

इस प्रकार अनन्य चिन्तन के लिए लोक में अनासक्ति भावना आवश्यक है क्योंकि इसके बिना रागद्वेष से मुक्ति नहीं मिलती। रागद्वेष एक आन्तरिक हिंसा है। केवल किसी को मार देना ही हिंसा नहीं होती।

श्रूयतां धर्म सर्वस्वं श्रुत्वाचाप्यवधार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।

अर्थात् धर्म का सर्वस्व यही है कि जो किसी अन्य के द्वारा किया गया आचरण, व्यवहार अपने को कष्टदायक एवं उद्विग्न करने वाला होता है तो वैसा आचरण या व्यवहार हमें भी कभी नहीं करना चाहिए जिससे दूसरों को शारीरिक या मानसिक कष्ट एवं उद्विग्नता हो।

इस प्रकार आचार–विचार में यदि मनुष्य स्पष्टता या स्वच्छता एवं सत्यता व्यवहार से अभ्यास में बना ले तो उसके जीवन में सुख शान्ति शाश्वत स्थिर हो सकती है।

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःख भाग्भवेत्।।

भट्टराजा वैद्य रविशंकर शास्त्री, जयपुर

(**सर्व आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण समाज, जयपुर** की पत्रिका **'औदुम्बर संदेश'** के वर्ष 2007 के अंक में प्रकाशित)

सनातन संस्कृति एवं उपवीत संस्कार

संस्कृति और संस्कार शब्द संस्कृत भाषा के हैं। संस्कृत व्याकरण के अनुसार "सम्" उपसर्ग पूर्वक "कृ" धातु से इनकी सिद्धि होती है। "सम्परिभ्यां करोतौ भूषणे" इस पाणिनीय सूत्र से भूषण अर्थ में "सुट्" आगम होता है और फिर "क्तिन्" प्रत्यय होकर संस्कृति एवं "घञ्" प्रत्यय होकर संस्कार शब्द की सिद्धि होती है। इसका स्पष्ट अर्थ है कि [illegible] जिन कर्मों से मनुष्य में साधारण व्यक्ति से [illegible] प्रदीप्त हो वही उसका संस्कार है और तदनुसार उसका आचरण एवं कार्यकलाप [illegible] है, [illegible] है एवं धर्म है। जिसका सदैव दृढ़ता से पालन करना चाहिये।

आजकल संस्कृति शब्द का "कल्चर" अर्थ किया जाता है यह सही नहीं है [illegible] है। पाश्चात्य में संस्कृति शब्द का अनुवाद स्वरूप पूर्ण [illegible] भाषाओं में नहीं है। "कल्चर" शब्द किसी देश या जाति के [illegible] का परिचायक है। "कल्चर" शब्द में किसी देश [illegible] संस्कार [illegible] किन्तु विदेशी सम्पर्क के कारण एक नहीं है कि सांस्कृतिक कार्यक्रम का अर्थ जो संगीत, नृत्य [illegible] हो गया है, वह सही नहीं है।

[illegible] सनातन धर्म की [illegible] पूर्णतया धर्म पर आधारित है और उसका पालन [illegible]

हमारे संस्कार श्रुति, स्मृति [illegible] मनुस्मृति [illegible] शास्त्र है। वेद का ही अनुसरण करते हुए स्मृति में [illegible] धर्मशास्त्रों में कुल 48 संस्कार बतलाये हैं। इनके [illegible]

[illegible] "अर्थात जिस ब्राह्मण के ये 48 संस्कार [illegible] सायुज्य, सालोक, सारूप्य और सामीप्य [illegible] प्राप्त कर सकता है। ये अड़तालीस संस्कार गौतम सूत्र में वर्णित हैं।

आज के युग में [illegible] अनुसार षोडश संस्कार प्रसिद्ध हैं [illegible] दूर हो रहा है, उनके नाम तक भी लोग परिचित नहीं हैं। [illegible] कि धर्म और संस्कार या संस्कृति के नाम [illegible] कि भारतीय संस्कार, संस्कृति और धर्म का मुख्य चिन्ह है "शिखा" और सूत्र [illegible] करते हैं।

[illegible] संस्कृति [illegible] है। जिससे प्रायः लोग [illegible] रहते हैं।

हमारे संस्कार और संस्कृति के विपरीत पाश्चात्य संस्कृति में आबद्ध होने में गौरव अनुभव करते हैं जैसे टाई लगाना, जन्मदिन पर केक काटना, मोमबत्ती बुझाना आदि, यह अनुचित है।

संस्कारों को नष्ट करने में आधुनिक शिक्षा भी जिम्मेदार है। छोटे बालकों की स्कूल की पोशाक भी पाश्चात्य संस्कृति मूलक है। इस तरह पाश्चात्य संस्कृति के रंग में प्रारंभ से ही बालकों को जब तैयार किया जाएगा तो उनमें भारतीय संस्कारों की अपेक्षा करना संभव नहीं है।

हमारे धर्म और संस्कृति के मूल स्रोत वेद हैं एवं वेदों का अनुसरण स्मृतियां करती हैं। इनमें मुख्य संस्कार सोलह बतलाये हैं।

1. गर्भाधान	2. पुंसवन	3. सीमन्त	4. जातकर्म
5. नामकरण	6. निष्क्रमण	7. अन्नप्राशन	8. चूड़ाकर्म
9. कर्णवेध	10. उपनयन	11. वेदारम्भ	12. समावर्तन
13. केशान्त	14. विवाह	15. अग्निपरिग्रह	16. अन्त्येष्टि

ये संस्कार अपनी वेद-शाखा के अनुसार करने का विधान है। वेद शाखा में गृह्य सूत्र का विशेष महत्व है। इसी के अनुसार किये जाने चाहियें। यहाँ वेद और श्रुति (अपौरुषेय) का निर्देश है। वेद धर्म का मूल है। "वेदोऽखिलो धर्ममूलम्"

आज संस्कारों के नाम से भी लोग परिचित नहीं हैं। इसलिये आज देश, काल और परिस्थिति के अनुसार कुछ संस्कारों का करना भी संभव नहीं है।

वर्तमान में प्रारंभ के तीन संस्कारों में से केवल सीमन्त संस्कार को ही मनाते हैं और वह भी कई जातियों में नहीं किया जाता है। जातकर्म संस्कार जन्म के समय का विधान है, चूँकि अधिकतर अब प्रसव अस्पताल में होता है, अतः उक्त संस्कार करना संभव नहीं हो पाता है। इसके बाद नामकरण कहीं कहीं संस्कार के रूप में किया जाता है। इसी तरह निष्क्रमण को कोई जानता भी नहीं। अन्नप्राशन तो कभी कभी किसी बच्चे का संस्कार के रूप में किया जाता है। तदनन्तर चूड़ाकरण प्रायः समारोह के रूप में होते हैं।

कुछ महाजनों में कर्णवेध संस्कार विधि विधान से करने की प्रथा है, अन्यत्र नहीं। इसे [illegible] नाम से भी किया जाता है।

इसके अनन्तर कुछ ब्राह्मणों में उपवीत संस्कार किया जाता है। इससे बालक को यज्ञ आदि करने का अधिकार प्राप्त हो जाता है। यह ब्राह्मण का मुख्य कर्म है।

"यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवाः" (यजुः)

अर्थात देवताओं ने यज्ञस्वरूप उस परम पुरुष परमात्मा का यजन (आराधना) किया अर्थात आराधना के लिये यज्ञ [illegible] कर्म है।

यज्ञोपवीत सोलह संस्कारों में दसवां संस्कार है। इससे पूर्व नौ संस्कार पूर्ण हो जाने चाहिये। यह संस्कार पूरी सावधानी से बालक का किया जाना चाहिए। इसके लिये गुरु विद्वान और पूर्णतः कर्मकाण्डी वैदिक ब्राह्मण का होना आवश्यक है।

आपस्तम्ब ऋषि स्पष्ट लिखते हैं :-

"तमसो वा एष तमः प्रविशति यमविद्वानुपनयते – इति ब्राह्मणः"

अर्थात यदि उपनयन संस्कार किसी अविद्वान से करा लिया जाता है तो वह बालक अंधकार से घोर अंधकार में चला जायेगा।

इसलिये बालक का संस्कार छोटी आयु में ही किया जाना चाहिए

गर्भाष्टमेऽष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम्। राज्ञामेकादशे सैके विशाम्... ... ॥ "याज्ञवल्क्य"

अर्थात गर्भ से आठवें वर्ष या जन्म से आठवें वर्ष में ब्राह्मण का उपनयन हो जाना चाहिये, क्षत्रिय का ग्यारहवें वर्ष में एवं वैश्य का बारहवें वर्ष में। "गायत्रो वै ब्राह्मणः" "श्रुति"

ब्राह्मण का गायत्री छन्द से विशेष संबंध है क्योंकि गायत्री छन्द में आठ अक्षर का उच्चारण होता है।

इसी प्रकार क्षत्रियों के लिए ग्यारह वर्ष का विधान है क्योंकि क्षत्रिय का संबंध "त्रिष्टुप" छन्द है और त्रिष्टुप छन्द का एक पाद ग्यारह अक्षर का होता है। "त्रैष्टुभो वै राजन्यः" "श्रुति"

इसी तरह वैश्य के लिए "जगती" छन्द निश्चित है। जगती छन्द का एक पाद बारह अक्षर का होता है। "जागतो वै वैश्यः" "श्रुति"। "जगतीच्छन्दो वै वैश्यः" "तैत्तिः"

इसलिये वैश्य का बारहवें वर्ष में संस्कार का विधान किया गया है।

उक्त कल्पानुसार संस्कार काल [illegible] का नियम निष्फल नहीं कहा जा सकता। यह भी तथ्यों पर आधारित है। गायत्री छन्द उपनयन की [illegible] अवस्था में पूर्ण रहता है. इसी तरह उपासक ब्राह्मण भी अपना [illegible] को पूर्णतः [illegible] में साधक होते थे।

क्षत्रिय के लिये युद्ध अभ्यास [illegible] जाता था [illegible] देश, काल, एवं समाज [illegible] का दायित्व संभालते थे।

वैश्य वर्ण का जगतीच्छन्द बारह अक्षर का है और बारहवें वर्ष में ही वैश्य बालक के यज्ञोपवीत का विधान है। वैश्य कृषि, वाणिज्य [illegible] द्वारा सामाजिक सुरक्षा का दायित्व वहन करता था।

इसलिये सभी वर्णों के लिए गर्भ से [illegible] काल निश्चय उनके संस्कार करना अधिक उपयुक्त है।

किसी कारणवश उपवीत यदि बालक का समय पर नहीं कर सके तो उसके लिए ब्राह्मण बालक का 16 वर्ष तक, क्षत्रिय का 22 वर्ष तथा वैश्य का 24 वर्ष तक संस्कार किया जा सकता है। इस अवधि के अनन्तर भी एक वर्ष से अधिक समय निकल जाने पर संस्कार का अधिकार समाप्त हो जाता है। उनकी "वृषल" संज्ञा हो जाती है। [illegible] वर्ण जाति–इति प्रमाणः (धर्मशास्त्र)

"ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः [illegible] एते "वृषला" स्मृताः।"

दूसरा संस्कार के अन्तर भी यदि उपनयन का इच्छुक है तो उसके लिए [illegible] के विधान के तहत उस दिन संस्कार किया जाना चाहिये। [illegible] में यह प्रकार के [illegible], स्नान आदि का विचार है किन्तु वर्तमान में [illegible] संभव नहीं है। ऐसी स्थिति में "[illegible]" [illegible] एक संस्कार किया जा सकता है। "[illegible]" [illegible] के द्वारा तो [illegible] को भी [illegible] किया जा सकता है जिसके कुटुम्ब में 2-3 पीढ़ी से संस्कार नहीं हुआ और वह पुनः संस्कार सहित ब्राह्मण [illegible] है।

बालक का उपनयन स्वयं पिता को ही करना चाहिये यह आवश्यक है। पिता के अभाव में अन्य पितामह, काका आदि का अधिकार है। "[illegible]"

"[illegible]"

यज्ञोपवीत ब्राह्मण का मुख्य सूत्र है। इसके द्वारा शरीर के [illegible] और [illegible] भाग स्पष्ट [illegible] होते है। यह शरीर के [illegible] और [illegible] भाग को [illegible] की [illegible] रेखा है।

[illegible] में [illegible] सूत्र हैं इन्हें "[illegible]" कहते हैं। [illegible] ग्रन्थों में त्रिवृत अर्थात एक-एक [illegible] धागा 3-3 का है, [illegible] के निर्देशक है। [illegible] यज्ञोपवीत के पूर्व [illegible] संस्कार किये जा चुके हैं। इसके अतिरिक्त [illegible] का [illegible] है और यह [illegible] है। "[illegible]" इस तरह [illegible] और [illegible] का [illegible] है "[illegible]" "[illegible]" आदि। इसलिये ब्राह्मण और [illegible] समान हो गये। अतः [illegible] का [illegible] और यज्ञ के [illegible] है।

इसके अतिरिक्त यज्ञोपवीत के तीन सूत्र ब्रह्मचर्य, [illegible] एवं [illegible] इन तीन [illegible] को [illegible] है। इसके बाद अध्ययन के अनन्तर [illegible] की जाती है। इसके तीन सूत्र [illegible], विवाह और अग्निहोत्र - इन तीन संस्कारों के [illegible] हैं। प्राचीन काल में [illegible] प्रत्येक पुरुष के लिये [illegible] होता था और इसलिए [illegible] के लिये भी उपवीत पहनना आवश्यक होता था।

[illegible] के लिये यज्ञोपवीत [illegible] आवश्यक माना है [illegible] और दूसरा पुरुष का। [illegible] के अनुसार [illegible] एक [illegible] पुरुष के [illegible] होते हैं। [illegible] तीन-तीन [illegible] हो जाते हैं। [illegible] रूप से [illegible] यज्ञोपवीत [illegible] होते है।

इससे यह तो स्पष्ट है कि यज्ञोपवीत सनातन धर्म एवं संस्कृति का [illegible] प्रतीक है।

इस संस्कार के साथ ब्राह्मण का [illegible] और यज्ञ से जुड़ जाता है। [illegible] के लिए भी संस्कार आवश्यक होने के [illegible] और प्रशासन आदि [illegible] के लिये आवश्यक [illegible] तथा वैश्यों के लिये [illegible] अनिवार्य रूप से [illegible] कि [illegible] के द्वारा [illegible] के लिये [illegible] है। [illegible] अंतर्गत आता है।

यह [illegible] धर्म एवं [illegible] विधान [illegible] है किन्तु [illegible] यह है कि यह संस्कार [illegible]

के अतिरिक्त अन्य वर्णों में किया ही नहीं जाता। ब्राह्मण [illegible] में भी जहाँ संस्कार किया जाता है वहाँ संस्कार [illegible] है इसके अनुरूप [illegible] आदि के [illegible] की बात तो [illegible] ही नहीं [illegible] केवल गायत्री [illegible] ही [illegible] अन्तिम [illegible] है।

इसके अनन्तर [illegible] वर्तन एवं [illegible] की प्रक्रिया [illegible] हो जाती है। उपवीत ब्राह्मण के लिये [illegible] है। [illegible] लोग इतना [illegible] हैं [illegible]

[illegible]॥

अर्थात यज्ञोपवीत [illegible] धार्मिक [illegible] माना जाता है। यज्ञोपवीत [illegible] द्वारा किया गया धार्मिक कार्य [illegible] हो जाता है।

इसी तरह मनु ने भी लिखा है कि जब तक यज्ञोपवीत नहीं हो जाता ब्राह्मण को किसी धार्मिक कार्य यज्ञादि करने का अधिकार नहीं है।

"[illegible]"

[illegible] आज की परिस्थिति में इस संस्कार को उपनयन के नाम से [illegible] भी नहीं [illegible] (समीप) [illegible] (ले जाना) गुरु के समीप [illegible] हेतु ले जाने का यह संस्कार होता है। [illegible] ही [illegible] ऐसी स्थिति में संस्कार का "उपवीत" नाम हो जाता है।

[illegible] के साथ [illegible] वेदाध्ययन हो जाता है। [illegible] विवाह और [illegible] गृहस्थ धर्म प्रारंभ हो जाते हैं। [illegible] संस्कार अनन्तर [illegible], [illegible] संस्कार किये जाते थे तथा [illegible] के अनन्तर अग्निपरिग्रह संस्कार [illegible] किन्तु [illegible] में अनुपयुक्त हो गये हैं। [illegible] प्रायः [illegible] हो चुके।"

[illegible] ने भी [illegible] और परिस्थिति के अनुसार आज्ञा दी है

[illegible] दीक्षा [illegible] कलौयुगे। [illegible]
अनुष्ठेया [illegible]॥

[illegible] उपनयन, समावर्तन एवं विवाह [illegible] संस्कार [illegible] के [illegible] की जाती है। ऐसी स्थिति [illegible] में यदि चलता रहा है तो [illegible] से ही सही हमारे संस्कारों की [illegible] रूप [illegible] की रक्षा भी [illegible] सकती है। [illegible] है।

[illegible] सर्व[illegible] प्रवृत्तः। [illegible]॥
(मनुस्मृति)
अर्थात धर्म के बिना [illegible] प्राप्त नहीं हो सकता।

सादर
आचार्य पूर्व [illegible]
श्री रविशंकरजी शास्त्री
[illegible]

(मालवा आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण मंडल, इन्दोर की अर्द्ध वार्षिक पत्रिका 'कलश' के दिसम्बर 2007 के अंक में प्रकाशित)

आत्म विश्वास एवं कठिन परिश्रम, बिमारी रूपी असफलता की सर्वश्रेष्ठ औषधि है। यह आपको एक सफल व्यक्ति बना सकती है।

— अब्दुल कलाम

सामयिक संगीत

कलश राठौड़

भारतीय साहित्य में पाँच ललित कलायें मानी गई हैं। काव्य, संगीत, चित्रकला, मूर्तिकला एवं वास्तुकला। इन पाँचों में संगीत का भी विशेष स्थान है। ये सभी कलायें प्रायः एक दूसरे से किसी न किसी से कुछ संपर्क रखती हैं। इनमें मानव की सहृदयता एक विशेष स्थान रखती है जो होनी ही चाहिये।

साहित्य संगीत कला विहीनः।
साक्षात् पशुः पुच्छ विषाण हीनः॥ भर्तृहरि (नीतिशतक)

जीवन में किसी कला के प्रति यदि अनुराग नहीं है तो मानव भी अन्य जन्तुओं की तरह पशु ही कहा जा सकता है। भारतीय संस्कृति एवं धर्म का वेद से अविनाभाव संबंध है। इसी प्रकार ललित कलाओं का भी वेद से ही नीकट संबंध है। वेदों की ऋचाओं में जो गीति रूप लिया जाता है, उनमें ताल स्वर के लिये उदात्त अनुदात्त का ध्यान रखा जाता है। अर्थात् स्वर ताल के बिना यज्ञ में सम्पूर्णता नहीं आती है।

इसी तरह मानव जीवन में भी संगीत के बिना नीरसता, शुष्कता एवं पशुता का अभाव है। ... आदि जो प्रत्येक जन्तु के शरीर में ... और वे जन्तु जिस प्रकार आहार विहार में आनंद एवं सानंदानुभूति अनुभव करते हैं, सहृदयता शून्य व्यक्ति उससे अधिक कुछ नहीं कर सकता।

अभिप्राय यह है कि संगीत मात्र मनोरंजन नहीं यह एक आध्यात्मिक साधना भी है। संगीत का सीधा संबंध नाद से है और नाद को ब्रह्म कहा जाता है। "नादोब्रह्म"।

नाद दो प्रकार का माना गया है। आहतनाद और अनाहतनाद। संगीत का संबंध आहतनाद से है। अनाहतनाद तो केवल ज्ञानी एवं समाधिस्थ ऋषि मुनि ही ... अनुभव एवं आराधन करते हैं।

आहतनाद दो प्रकार का हो सकता है। ... इसको ... में ... सकता है जैसे सार्थक एवं निरर्थक। सार्थक नाद संगीत आदि के लिये उपयोगी होता है और निरर्थक जैसे "कोलाहल", जिसका कोई उपयोग नहीं।

सार्थक नाद के ... जैसे ... नाद संगीत में वह है जिसे कान में ... अनुभव किया जाता है।

भारतीय शास्त्रीय संगीत में मुख्यतः दो पद्धतियाँ प्रचलित हैं। १. हिन्दुस्तानी संगीत, २ कर्नाटक (दक्षिण भारतीय)। उत्तर भारतीय संगीत पद्धति को ही हिन्दुस्तानी पद्धति कहते हैं। इसमें २२ श्रुतियाँ मानी गई हैं। ... श्रुतियों ... के स्वरों की उत्पत्ति होती है, श्रुति संख्या- १,५,८,१०,१४,१८,२१ से ही (१) षड्ज, (२) ऋषभ, (३) गन्धार, (४) मध्यम, (५) पंचम, (६) धैवत तथा निषाद, अर्थात् सा, रे, ग, म, प, ध, नि, ये सात स्वर हैं। इसी प्रकार श्रुति संख्या, ३,७,१२,१६,२० ... १. कोमल ऋषभ, २. कोमल गन्धार, ३. तीव्र मध्यम, ४. कोमल धैवत एवं ५. कोमल निषाद स्वर अर्थात् रे, ग, ध, नि - ये विकृत स्वर होते हैं।

इस तरह एक सप्तक में बारह स्वर होते हैं। जिन्हें शुद्ध और विकृत नाम से कहा जाता है। इन बारह स्वरों में 'सा' और 'प' ये दो स्वर स्थिर हैं अर्थात् इनमें तीव्र और कोमल भाव नहीं होते।

उपर्युक्त इन्हीं बारह स्वरों के मेल और क्रम से भिन्न-भिन्न रागों की उत्पत्ति होती है।

योऽयं ध्वनि विशेषस्तु, स्वरवर्ण विभूषितः
रञ्जको जन चित्तानां स रागः कथितो बुधैः।

इस प्रकार स्वर और वर्ण से विभूषित ध्वनि विशेष को रागनाम से कहा जाता है और यही श्रोताओं का मनोरंजन करता है।

गाने की क्रिया को यहाँ "वर्ण" कहा जाता है। ... आरोह, अवरोह, संचारी आदि नामों से संबोधित है।

एक ही स्वर को बार-बार आंदोलित किया जाता है तो उसे "स्थायी" संज्ञा दी जाती है। इसी तरह ... स्वर ... है तो उसे "आरोह" एवं 'नि' से पुनः 'ध' और 'सा' को ... जाते हैं तो उसे "अवरोह" नाम दिया जाता है। इसी प्रकार "संचारी" में दोनों और मिला-जुला स्वर संयोजन होता है।

राग के तीन भेद हैं। १. औडव २. षाडव ३. संपूर्ण

जिस राग में आरोह और अवरोह में पाँच स्वर लगते हैं उनकी जाति "औडव" होती है।

इसी तरह जिस राग में आरोह एवं अवरोह में छः स्वर होते हैं उनकी जाति "षाडव" है।

जिस राग के आरोह एवं अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग होता है उसे "संपूर्ण" जाति का कहा जाता है।

इसके अतिरिक्त आरोह अवरोह में भिन्नता होने पर अर्थात् जिसमें आरोह में पाँच स्वर एवं अवरोह में छः या सात स्वर लगते हैं तो वह "औडव-षाडव" या "औडव-संपूर्ण" कहलाता है।

इस विषय का विस्तृत विवरण है जो इस विषय की पुस्तकों में देखा जा सकता है, यहाँ सब कुछ देना संभव नहीं है।

राग ... के हैं। जैसे प्रातःकालीन, मध्य दिनकालीन, सायंकालीन, रात्रिकालीन आदि। इसी तरह कई राग ऋतुकालीन ... मल्हार आदि वर्षा काल में ... इसी तरह बसंत, बहार, ... आदि बसंत ऋतु या होली के आसपास अधिक ... होते हैं।

इसी श्रृंखला में ... "काफी" राग में प्राचीन परम्परागत पद (धमार) प्रस्तुत कर रहा हूँ। ... काफी राग ... परिचय देना अधिक उपयुक्त समझते हुए काफी ... शास्त्रीय परिचय प्रस्तुत कर रहा हूँ इसके अनन्तर धमारें (पद) प्रस्तुत कर रहा हूँ।

"काफी" ... "काफी" ठाट से उत्पन्न हुआ है। यह "संपूर्ण-संपूर्ण" जाति का राग है

इसके आरोह एवं अवरोह में सातों स्वरों का प्रयोग होता है। [illegible] निषाद कोमल लगाते हैं। [illegible] गुणीजन [illegible] के सौन्दर्य को बढ़ाते हुए आरोह में [illegible] निषाद का भी प्रयोग [illegible] हैं। [illegible] बहुत मधुर एवं [illegible] है। [illegible]

आरोह - [illegible]

अवरोह - [illegible]

पकड़ - [illegible]

पद (हिंदी)

स्थायी

[illegible]

[illegible] प्रेम नहीं संग [illegible] करता।

[illegible] पिचकारी भर [illegible] सारी,

[illegible]

[illegible]

[illegible] जन्माष्टमी [illegible]

[illegible]

महाराजा श्री [illegible] शास्त्री, जयपुर

(मालवा आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण मंडल, इन्दोर की अर्द्ध वार्षिक पत्रिका 'कलश' के अप्रेल 2008 के अंक में प्रकाशित)

औदुम्बर–संदेश

सर्व आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण समाज, जयपुर द्वारा प्रकाशित

अर्द्धवार्षिक पत्रिका

जन्माष्टमी की हार्दिक शुभकामनाएं

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म

किसी भी उपासना या ध्यान के प्रारम्भ में ॐ का स्मरण या उच्चारण किया जाता है। कारण यह है इसे ब्रह्म का स्वरूप माना गया है। इसलिये इसका अन्तः ज्ञान आव'यक है। इसी से सब सृष्टि का उद्भव होता है।

''यतो वा इमानि भुतानि जायन्ते। येन जातानि जीवन्ति। यत्प्रयन्तय मि संविशान्ति। तद्विजिज्ञासस्वः। तद् ब्रह्मेति।

अर्थात जहाँ से सब जीव उत्पन्न होते है। जिससे उत्पन्न होकर जीवित रहते हैं एवं सुरक्षित होते हैं और अन्त में जहाँ विलीन हो जाते हैः यह सब प्रयत्न करके समझो। वही ब्रह्म है।

ॐ - अ + उ + म् = इसमें तीन अक्षरों का समीकरण है। ''अ'' वैश्वानर है, ''उ'' में भी वैश्वानर है किन्तु साथ ही क्रिया भी है क्यों कि क्रिया के बिना कोई प्रक्रिया नहीं हो सकती। ''म'' उसका विराम है यहाँ इसकी वाच्य प्रक्रिया सम्पन्न हो जाती है।

अर्धमाया जो अनुच्चार्य ध्वनि है, यह अखण्ड है किन्तु अनधार्य है और अव्यवहार्य भी। इसे तुरीय कहा जाता है और अन्तर्नाद भी कहा जा सकता है।

त्रयीतिस्त्रो वृत्ति स्त्रिभुवन मथो,
त्रीनपिसुरा नकाराद्यैर्वणे त्रिभिरमिदधत् तीर्ण विकृतिः
तुरीयं ते धाम ध्वनिमि, रवरून्धान मणुभिः।
समस्कम् व्यस्तं, शरणद गृणात्योमिति पदम्।।
शिव माहिम्न स्तोत्रम्।

भावार्थ – हे शरण देने वाले भगवान ॐ यह वीज (शब्द) अपने व्यस्त अर्थात पृथक–पृथक अक्षर वाले (अ + उ + म्) इन तीनों अक्षरों से त्रई तीनों वेद (ऋक, यजु, साम), तीनों वृत्तियों से अर्थात (जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति), तीन भुवन (स्वर्ग, भूमि, पाताल), तीन देवता (ब्रह्मा, विष्णु, महेश), तीन शरीर (स्थूल, सूक्ष्म, कारण), तीन रूप (विश्व, तैजस, प्राग्य) आदि से आपकी ही महानता प्रतिपादित करता है। इसके अतिरिक्त

समस्त रूप से अर्थात् ॐ इस एक वीज स्वरूप में उक्त त्रिपुटि से भिन्न रहते हुए तुरीय (चतुर्थ) सूक्ष्म ध्वनि अनाहत नाद रूप से भी आपका ही प्रतिपादन करता है। अर्थात ॐ वह वीज सर्वतः सम्पूर्ण रूप से आपके ही स्वरूप को निर्वाचित करता है।

यह तुरीय अवस्था है इस प्रकार ''ॐ'' इस एक अक्षर में पूर्णब्रह्म समाविष्ट है।

''अ'' अव्यय पुरूष है, ''उ'' अक्षर पुरूष है, ''म'' क्षर पुरूष है एवं अर्धमात्रा जो अनुच्चार्य है वह परात्परपुरूष तुरीय स्थिति है। इस प्रकार ''ॐ'' ब्रह्म के चारों पादों का सूचक है।

''अ'' का 'ऊष्मा' भाग विकास को बतलाता है। स्पर्श भाग संकोच को, विलास अग्नि है तथा संकोच सोम। ''अग्नि सोमात्मकं जगत्'' इस प्रकार इन दोनों मिश्रण से ही सारी सृष्टि है।

इसी प्रकार शब्द सृष्टि भी ''स्पर्श और ''ऊष्मा'' से ही बनी है। व्याकरण के अनुसार '' कादयो माचसानात् ''सगर्शाः'' अर्थात् ककार से लेकर मकार तक जो वर्ण समूह है उसकी ''स्पर्श'' संज्ञा है याने उस वर्ण समूह का नाम ''स्पर्श'' है। एवं शकार से लेकर ''हकार'' तक के वर्ण समूह की ''ऊष्मा'' संज्ञा है। इसी तरह स्वर सभी ''अच'' के अन्तर्गत आते हैं।

''अ'' से ही सब शब्द बने हैं। गीता में भगवान ने कहा है। ''अक्षराणा मकारो ऽस्मि'' ''अ'' वर्ण असंग है इसलिए इसे अव्यय पुरूष रूप में माना जाता है।

''उ'' वर्ण में मुख का संकोच होता है अतः यह संज्ञा संग है। यह न तो ''अ'' की तरह असंग है और न ''म'' की तरह ससंग। यह अक्षर पुरूष का वाचक है।

''म'' क्षर पुरूष है। इसमें मुंह का पूरा संकोच हो जाता है। इसके अनन्तर अर्धमात्रा परात्पर पुरूष की सूचक है। इसमें शास्त्र की भी गति नहीं है। इस प्रकार ॐ पूर्णब्रह्म वाचक एवं सूचक है। सारे तप ध्यान, उपासना आदि इसी के लिए किये जाते है। यह पूर्णब्रह्म है अपूर्ण नहीं होता।

पूर्ण मदः पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्ण मुदच्यते पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवाव शिष्यते।

0+0, 0-0। यह भी पूर्ण है और वह भी पूर्ण है। पूर्ण में से पूर्ण निकलने पर भी पूर्ण ही अवशिष्ट रह जाता है। यहाँ ''यह'' प्रत्यक्ष को बतलाता है और ''वह'' परोक्ष को। जीव प्रत्यक्ष है और ईश्वर परोक्ष। ईश्वर तो पूर्ण है ही लेकिन जीव भी पूर्ण है। इससे यह सिद्ध है कि जीव भी ईश्वर का ही पूर्णांश है।

हमारा व्यक्तित्व विश्व का प्रतिबिम्ब है। पृथ्वी शरीर है। चन्द्रमा हमारा मन है। सूर्य हमारी बुद्धि है। विश्व में परमेष्ठी हम में महत् विश्व में स्वयम्भू है। हम में ''अव्यक्त''।

अव्यक्तता स्थायी है। **''अव्यक्तादीनीमूतानि भारत। अव्यक्त निधनान्नयेव''**

इस प्रकार सभी ब्रह्माण्ड अव्यक्त में समाहित है। इसका बीज रूप केवल एक ब्रह्म है और उसका वाचक एवं सूचक है **ॐ बीज। ओमित्येकाक्षंर ब्रह्म''**

भट्टराजा वैद्य रविशंकर शास्त्री
जयपुर

(**सर्व आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण समाज, जयपुर** की पत्रिका **'औदुम्बर संदेश'** के अगस्त 2008 के अंक में प्रकाशित)

उद्भट विद्वान, शिखर व्यक्तित्व, भट्टराजजी प्रेम का अनन्यत्व स्वरूप अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से प्रस्तुत कर रहे हैं।

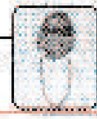

अनन्यत्व ही प्रेम है

प्रेम परब्रह्म स्वरूप है। परब्रह्म ही निर्विशेष है। वही द्रवीभूत चित्त पर प्रकट होकर प्रेम कहलाता है। त्याग ही प्रेमी का जीवन है और सहिष्णुता ही उसका स्वरूप। वासनाजन्य आसक्ति प्रेम नहीं कहा जा सकता। प्रेम में होने वाला त्याग और सहिष्णुता प्रतिदान निरपेक्ष है। इसमें सिर देने की भी सामर्थ्य साहस और तैयारी रहती है। बदले में कुछ भी अपेक्षा नहीं की जाती। और न कभी मुख से उसकी प्रस्तुति या संस्तुति ही की जाती है। यदि कभी शब्दों में प्रकट कर दिया गया तो उससे या तो वह समाप्त हो जाता है और समाप्त यदि नहीं भी हो तो उसकी गरिमा न रह कर लघुता अवश्य आ जाती है।

प्रेमाढ्यो रसिकस्यो। रपि दीप एव
हृद्वेश्म भासयति निश्चल मेव कान्ति।
वाचावर्णं वदनात् स्तु बहिष्कृत – श्चेत्
निर्वाति – शीघ्र मथवा लघुताम् उपैति।

प्रणय यदि प्रगाढ़ एवं सत्य एवं आन्तरिक है तो वहाँ यह भी कल्पना नहीं की जाती कि कोई क्या कहेगा?

व्यतिषजति पदार्थानान्तरः कोऽपि हेतु
न खलु बहिरुपाधीन् प्रीतयः संश्रयन्ते..... भवभूति

अर्थात कोई आन्तरिक ही कारण होता है जो पदार्थों को परस्पर अभिन्न प्रकार से मिला देता है। प्रेम बाहरी दृश्य आकर्षक वस्तुओं की अपेक्षा नहीं करता। वे बाह्य वस्तुएँ उसका आश्रय नहीं बनती। यह तो स्वाभाविक होता है।

महाकवि श्री हर्ष द्वारा नैषध में दमयन्ती का नल के प्रति आकर्षण और प्रेम का वर्णन अनन्यत्व का उत्कृष्टतम् उदाहरण है।

चेतो नलं कामयते मदीयम्

अर्थात् मेरा मन केवल नल को ही चाहता है। इस एक ही वाक्य में कवि ने तीन कथ्य प्रकट करते हुए दमयन्ती के प्रेम का अनन्यत्व प्रदर्शित किया है। अर्थात् मेरा मन तो केवल नल को चाहता है। ''न लङ्कामयते'' अर्थात् अन्य कोई वैभव जैसे सोने की लंका भी हो तो उसकी मुझे चाह नहीं है इसके अतिरिक्त नल के न मिलने पर उसके अभाव में ''अनलं कामयते'' अर्थात् मैं अग्नि समर्पित होना चाहती हूँ। इस प्रकार एक ही वाक्य तीनों अभिलाषाओं का निदर्शन अनन्यत्व का उदाहरण कहा जा सकता है।

मेरे तो गिरिधर गोपाल
दूसरा न कोई।......   मीराबाई

उक्त पद में दूसरी पंक्ति में स्पष्ट अनन्यत्व दीखता है।

देव बिन मेरा जीवन सूना
मुझ बिन तड़ पुष्मा प्यासी।.....   लक्ष्मी नर्तो

अर्थात् एक दूसरे में इस प्रकार तदात्म्य है कि एक के बिना दूसरे का जैसे कोई अस्तित्व ही न हो।

अनन्यत्व के बिना स्वानुभूतिमयी अभिव्यक्ति नहीं हो सकती और न ही उसके बिना आन्तरिक प्रेम ही अभिव्यक्त होता।

यह शब्दाभिव्यक्ति नहीं अपितु अनुभवाभिव्यक्ति है।

निद्रा निर्मीलित नयनों मन्दमन्दस्य तस्याः
नात्यर्थं वर्णानि न याति निरर्थकानि।
अद्यापि मे वरतनोः मधुराणि तस्याः
तान्यक्षराणि हृदये किमपि ध्वनन्ति।।

अर्थात् मनमार से थकी हुई एवं अर्ध निद्रितावस्था में आंखें थोड़ी खुली हैं एवं थोड़ी बन्द हैं ऐसी स्थिति में उसके मुख से निकले हुए वे अस्पष्ट शब्द जो न तो उनका अर्थ ही समझ में आता और न वे निरर्थक ही कहे जा सकते ऐसी उस प्रियतमा के वे मधुर शब्द आज भी मेरे हृदय में ध्वनित हो रहे हैं अर्थात् गूंज रहे हैं। अर्थात् यह शब्दाभिव्यक्ति नहीं अपितु अनुभवाभिव्यक्ति है एवं अनन्यत्व का आभास है।

प्रेम केवल सौन्दर्य दर्शन की अभिव्यक्ति नहीं है।

असुंदरः सुंदरशेखरो वा
गुणैर्विहीनः गुणिनां वरो वा।
द्वेषी मयि स्यात् करुणाम्बुधिर्वा
कृष्णः स एवाद्य गतिर्ममायम्।

अर्थात् वह सुंदर नहीं है या सुंदरतम है, वह निर्गुण मूर्ख है या गुणियों का अग्रगण्य श्रेष्ठतम, मेरे प्रति वे द्वेषी कठोर हैं या कृपालु हैं कुछ भी हो मेरे तो वे कृष्ण ही सर्वस्व हैं।

बान्धवा यदि जहाति हीयताम्
साधवो यदि हसन्ति हस्यताम्
माधवो यदि निहन्तु हन्यताम्
माधवः स्वयमुरीकृतो मया।।

अर्थात् बन्धु लोग यदि मेरा बहिष्कार करते हैं कर दें। सज्जन लोग यदि उपहास करते हैं करते रहें। स्वयं माधव भी यदि मुझे जान से मारते हैं, तो मार दें। मैंने तो स्वयं ही उन्हें अपनाया है, वे ही मेरे सर्वस्व हैं।

इस प्रकार पूर्णतया एकत्व स्थापित करते हुए उनकी समाज में क्या स्थिति हुई होगी इसका केवल अनुमान ही लगाया जा सकता है।

आज के समय में तो ऐसी स्थिति में मानसिक चिकित्सालय ही भिजवाया जाय क्यों कि अनन्यत्व क्या होता है इसका लोग अनुमान भी नहीं कर सकते। केवल कथा सुनकर कथा वाचकजी को ही अर्पित कर दी जाती है।

उर्दू साहित्य में प्रेम निदर्शन के लिये लैला मजनूं, शीरीं फरहाद आदि की गाथायें काफी प्रसिद्ध हैं। जिन में लैला का असुंदर (बदसूरत) होना बताया गया है किन्तु उनका प्रेम अनन्य था इसीलिये वे गाथा आज तक प्रसिद्ध हो रही हैं।

आधुनिक काल में तो जो भी दूरदर्शन या सिनेमा आदि के माध्यम से एवं वास्तविक सामाजिक व्यवहार के माध्यम से जो प्रक्रिया देखी जा रही है उसमें प्रेम की कृत्रिम गंध भी नहीं नज़र आती। समाज में प्रायः साकारात्मक (सौन्दर्य, सम्पत्ति, सेहत) के माध्यम का प्रदर्शन है। जहाँ एक तो यही तीन सकार आकर्षण के केन्द्र होते हैं। उनके अभाव में एक दूसरे के दूर–दर्शी ही हो जाते हैं। वास्तविक प्रेम कहीं भी झलकता नहीं है।

इसीलिये प्राचीन काल में प्रेम एवं परब्रह्म का स्मरण करते थे और अनुभव भी करते थे वह अनन्य होता था।

–महाराज श्री [illegible] शास्त्री
([illegible])

(**मालवा आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण मंडल, इन्दोर** की अर्द्ध वार्षिक पत्रिका **'कलश'** के मार्च 2009 के अंक में प्रकाशित)

स्मरण योग्य बातें

- **सदा सेवन करने योग्य चार चीजें** – सत्संग, संतोष, दान, दया।
- **आदमी के बिगड़ने की चार अवस्थाएं** – जवानी, धन, अधिकार, अविवेक।
- **भाग्य से मिलने वाली चार चीजें** –
  भगवान को याद रखने की लगन, संतों की संगति, चरित्र की निर्मलता, उदारता।
- **स्मरणीय बातें** –
  बड़ों का आदर करना, छोटों की रक्षा एवं उन्हे स्नेह करना, बुद्धिमानों से सलाह लेना, मूर्खों से कभी न उलझना।

संकलन – डॉ. दिशा भट्ट

उद्भट विद्वान, शिखर व्यक्तित्व भट्टराजाजी वैदिक वाङ्मय में पर्यावरण चेतना की प्रबुद्धता का विश्लेषण कर रहे हैं।

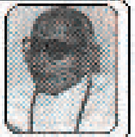

वेद और पर्यावरण चेतना

वैदिक साहित्य का प्रश्न होता है वहाँ पर्यावरण चेतना स्वतः में आती ही है। अग्नि में पर्यावरण का भाव आता है वहाँ यह तो निश्चित है कि यज्ञ केवल अग्नि तर्पण मात्र नहीं है। इसमें मानव जीवन से समर्पित उद्दीप्त भावना भी है जिसे हम यज्ञ आदि के विशेष शब्दों से अभिव्यक्त करते हैं। यह उद्दीप्त विचार एवं सद्भावना ही यज्ञ विचार से विदित है। उद्दीप्त विचार एवं भावना यह मानव को पवित्र जीवन प्रदान करते हैं। शुक्ल यजुर्वेद में जहाँ वायु व जल आदि का सिञ्चन अभिषेक आदि बताया गया है स्थल शुद्ध वेद एवं शुद्ध वेद का समर्थन करते हैं। उन मन्त्रों की ध्वनि आदि कोई वातावरण को दूषित नहीं करता अपितु उससे वातावरण शुद्ध और माङ्गलिक बनता है।

वेद में स्थान-स्थान पर कई प्रकार के मन्त्र एवं विशिष्ट सम्भ्रान्ति पूर्ण वातावरण को शुद्ध एवं सचेत करते हैं वेद में –

''द्यौशान्तिरन्तरिक्षं शान्तिपृथिवी शान्ति रापः शान्ति ओषधयः शान्तिः वनस्पतयः
शान्तिः विश्वेदेवाः शान्तिः ब्रह्मशान्तिः शान्तिरेव शान्तिः सामा शान्तिरेधि।''

अर्थात उक्त मन्त्र मानव शान्ति और परिष्कृत वातावरण के लिये कितने शुद्ध संकलित एवं शान्ति- मार्ग गतिशील हो सके, इसके अतिरिक्त प्रांजल नेत्र से शुभ क्रिया करना ही हमारा उद्देश्य रहे। हमारे सभी अङ्ग सक्रिय रहते हुए सुस्ती को दूर करते हुए सतर्क हो कर कार्य करें। अन्य क्रियाओं से दूर रहें।
इन कार्यों के अतिरिक्त भी वेद हमें सद्बुद्धा और सत्मार्ग से ही हमें जोड़ें

''वनस्पते न त्यवेतावान न्यन्यो विश्वाजातानि परिता बभूव।
यत्कामास्ते जुहुम सतन्नोवर अस्तुवयाछं श्याम पतयों रयीणाम्।''

अर्थात् – हे ईश्वर। न इन सभी विभागीय बातों के अतिरिक्त कोई दूसरा काम सामने आया है इस लिये इन अतिरिक्त दुष्कर्मों, निषिद्ध विकर्मों या इधर से वहाँ और अतिरिक्त

कर्मों के अतिरिक्त कोई काम सामने नहीं दृष्टिगोचर होता इस लिये इन सबसे दूर रहकर समान आदर युक्त और क्रिया करें हम उसी से हम एकीकृत करें।
इनके अतिरिक्त भी एक मन्त्र है -

मित्रस्य मा चक्षुषा भूतानि समीक्षन्ताम्
मित्रस्याहं सर्वाणि भूतानि समीक्षे
मित्रस्य चक्षुषा समीक्षा महे॥

अर्थात शान्ति ... सुख निर्भय हो तथा दुष्टता या अन्य कुरीतियां जो भी मेरे मन में हो वे सब दूर हट जावें और मित्र दृष्टि से देखें। अन्य व्यक्ति में इन विकृत बातों का प्रभाव न रहे ताकि पूर्ण नया शरीर और स्वास्थ्य आदि सम्पूर्ण रहे। इसके अतिरिक्त

''पृथिवीं यच्छ पृथिवीं दृं ह पृथिवीं मा हिं सीः।''

अर्थात पृथिवी के वायु मण्डल के पूर्ण संरक्षण करने की एक प्रार्थना है जिससे कि वायु मण्डल में किसी प्रकृति की भावना न जागावें और सभी प्राणी सुरक्षित और संरक्षण से जीवन बिता सकें।

''शं नो भविष्युरन्तुनः।''

अर्थात वेद ने पौधे और पशुओं के संरक्षण की दिशा दी है जिससे कि इन सभी का पूर्णतया प्रतिसंरक्षण कर सके।

''माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः।''

अर्थात हमारे समाज और सुसंस्कारित औषधियों का प्रभाव ... विशेष संरक्षण करें। और वे सदा ... और शान्ति देने वाली हो।
इस प्रकार वेद में पर्यावरण को हानि न पहुंचे, उनकी सुरक्षा निरन्तर चलती रहे। उन औषधियों का प्रयोग कोई दुर्भावना आदि का संस्कार न हो लोग अनुचिंतन और रसायन एवं आदि का संरक्षण सुरक्षित रखें। यही वेद की पर्यावरण के प्रति भावना है।

सादर भट्टराजा रविशङ्कर शास्त्री
जयपुर

(मालवा आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण मंडल, इन्दोर की अर्द्ध वार्षिक पत्रिका **'कलश'** के दिसम्बर 2009 के अंक में प्रकाशित)

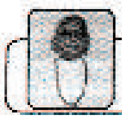

कलश – प्रेम

प्रखर विद्वान, विचार व्यक्तित्व, शुक्लाजी प्रेम का अन्तस्थल स्वरूप अपने विशिष्ट दृष्टिकोण से प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रणय

प्राचीन और आधुनिक प्रतिस्पर्धा से भावुक हृदयों में प्रणय का ज्ञान स्पर्श एवं संक्रमण क्यों, और किस तरह प्रतिष्ठापित हो, मानव हृदय को स्पर्धा एवं एक अनिश्चित प्रतिस्पर्धा में डाल देता है, यह स्वयं प्रतिपादित कहा जा सकता है। भारत के प्राचीन इतिहास यही निश्चित करते हैं कि सामान्य प्रक्रिया में मनुष्य उस पूर्ण विचारना में संस्कारित नहीं होता जैसा कि माना जाता है। उक्त प्रणय की प्रक्रिया ही अद्भुत है।

प्राचीन व्यक्ति उक्त प्रक्रिया को एक प्रत्यर्थी मूल रूप से कहते हैं। जितने भी साहित्यकार हैं वे सब इसी का सम्पादन करते हैं। प्राचीन या अर्वाचीन इस प्रक्रिया में ज्यों–ज्यों घुसते गये उनका इतिहास कुछ अनिर्णित ही रहा। हमारे प्राचीन साहित्यकारों ने इस क्षेत्र में जैसे–जैसे विकास या प्रकाश को सम्पन्न किया वे इससे सर्वथा एकीभूत और अद्वितीय रहे। हमारा प्राचीन इतिहास जिस विषय और प्रक्रिया को ढूंढता था वह उसमें पूर्ण और अन्तःस्पर्शी होता गया। इसी संदर्भ में जब महाकवि कालीदास, भवभूति, हर्ष आदि या अन्य बड़े कवि एवं लेखकों का प्राचीन मत कुछ अविच्छिन्न गति से चलता है। प्राचीन कवियों में श्री कालीदासजी को लें तो मालूम होता है कि इनकी थोड़ी – थोड़ी गति हमें दूसरे ही स्थान पर ले जाती है।

इनका मुख्य गीति काव्य एवं खण्ड काव्य – ऋतु संहार, मेघदूत।

महाकाव्य – कुमार संभव, रघुवंश।

नाटक – विक्रमोर्वशी, मालविकाग्निमित्रं एवं अभिज्ञान शाकुन्तलम्।

उपर्युक्त सभी काव्यों और नाटकों में कवि ने वर्ण, छटा, स्वभाव प्रेषणता व कोमल भावनाओं को ऐसा कोमलकान्त पदावली में रंग संयोजन में, रसभाव प्रवणता में एवं मौलिक भावों को कोमल कान्त पदावली में ऐसा चित्रित किया है कि इनको देखते ही पापतापमय संसार से भय व बन्धन छूट जाता है।

इसी प्रकार शाकुन्तल ४ अङ्क ४, यास्यत्यद्येति 'यास्यत्यद्य शकुन्तलेति हृदयं संस्पृष्टमुत्कण्ठया कण्ठः स्तम्भितबाष्पवृत्तिकलुषश्चिन्ताजडं दर्शनम्। वैक्लव्यं मम तावदीदृशमिदं स्नेहादरण्यौकसः पीड्यन्ते गृहिणः कथं नु तनयाविश्लेषदुःखैर्नवैः॥

भावार्थ – यास्यति अर्थात् जायेगी ही (अभी गई नहीं है) अर्थात् जाने के बाद तो हृदय उत्कण्ठित होकर न जाने कैसा उत्पीड़न प्रकट करेगा, यह हार्दिक विचार ही उत्कण्ठा स्थान है। कण्ठः कण्ठ स्तम्भित यानि वाष्पवृत्ति से कलुषित है इस कलुषता को दिखाने का कारण ही यह है कि इसमें कहना चाहते हुए भी यह बोल नहीं सकता क्योंकि यह मानव स्वभाव के अन्तर्गत है। इसके अतिरिक्त ''चिन्ता जडं दर्शनम्'' वाली मेरा शारीरिक अन्तःदर्शन विकृत है कि मैं चिन्ताजड़ हूं। मेरा दर्शन असाध्यरत है। मेरी मानसिक दशा विकृतिपूर्ण है कि मैं पूर्णतया विवाद की स्थिति में नहीं हूं। क्योंकि यह सब विकृति स्नेहार्दता है जबकि हम बिलकुल अविकृत वातावरण में रहते हैं। ऐसी स्थिति जब अविकृत मानस से निष्क्रय है तो उन गृहस्थ विकृत मानस का क्या हाल होगा जो तनया को मन से अपनाकर नहीं करते। नहीं चाहते क्यों कि बाद में तो 'प्रस्थान होना है किन्तु विवाह पश्चात विकृतिमय दुःख सालने आता है।

उक्त दर्शन में प्रत्येक वाक्य व उक्ति में असंस्कृत व्यङ्ग आदि की स्पष्ट झलक है। अब एक एक व्यङ्ग आदि को स्पष्ट किया जाय तो यह एक नवीन ग्रन्थ ही जायगा। इस उक्ति को यहीं समाप्त करते हुए आगे बढ़ते हैं। क्योंकि

''कालिंदि तस्य रागेण आकिंजल्क उपकूलानां ... रागादि च मधुपोच्छलत्य भ्रमक चक्षुष्मती, एक परिसिद्धि कि भानुवार प्रथम पठित है।

इसके बाद श्री भवभूति जी का वर्णन आता है जो उन्होंने कई जगह लिखा है।

'... ' -- भवभूति

इस पद से स्पष्ट है कि प्रणय का सर्व आलोकित है। इसमें किसी का एकाधिकार नहीं है। यह ऐसा विषय है कि किसी एक की ठेकेदारी नहीं है। इसमें कहीं विषय कहीं परिस्थितियाँ फलती–फूलती है। कोई अभिव्यक्ति नहीं है। जो भी जिस प्रसंग के अनुसार लिखता है वह उसी में अपना वैशिष्ट्य प्रकट करता है और पाठक उसमें आकृष्ट भी होते हैं यह एक ऐसा विषय है जिसे एकाकार लिये नहीं कहा जा सकता।

संस्कृत में एक श्री हर्ष हुए। इनकी कल्पनाशक्ति अत्याधुनिक है। इनकी कृति को देखने से यह कहा ही नहीं जाता कि ये कवि हैं या आधुनिक कल्पनाकार। उनकी भी शैली आधुनिकता है। एक व्यक्ति यह जान ही नहीं सकता कि यह क्या अत्याधुनिक कल्पना है। इन्हें सैकड़ों वर्ष हो चुके हैं लेकिन आधुनिकता का पर्व नहीं है। इनके द्वारा उल्लिखित पद्य उद्धृत है –

''स हिरण्यं ...

यह ...

...

...

... ''

इस पद्य में शाण्डिल्य अपना पूर्ण स्वरूप बताते हुए स्वयं कवि ने भाषा और कवित्व की प्रतिभा अनुप्राणित की है। शाण्डिल्य हो या अन्य कोई विषय; यदि रचना एक पण्डित है तो उसे किसी प्रकार कोई कमी अनुभव ही नहीं होती। वह भाषा के निर्बन्धता से निर्माण करता है। कहीं सोचने की आवश्यकता ही नहीं रह जाती।

अब रह जाती है पूर्णोक्तता की कमी जिसके लिए अब उसका अनुवाद होगा।

ऊपर संस्कृत के पद को मैंने शायद पूर्व में भी कहीं उद्धृत किया है। शेष रहता है प्रणय का रूप वर्णन जो नीचे लिखित कुछ शब्दों में उसका थोड़ा सा प्रयास सफल होगा।

जहाँ प्रेम का प्रादुर्भाव है वहाँ शुद्ध परमात्मा है एवं स्वच्छता है। साधक के हृदय में श्रीगुरु अंतःकरण प्रेम पद से आलिंगित हो जाते हैं। शुद्ध परमात्मा ही सर्वगुण भगवान और उनकी माधुर्या भगवती राधा बस में ही दोनों प्रेम के आश्रय हो सकते हैं। उभयत्र आत्मा और उभय एक भावात्मा यही शुद्ध प्रेम है। भगवान के हृदयस्थ पूर्णानुराग एवं भाव समुद्र समुद्भूत चन्द्र राधा का मुख्य चन्द्र है। और राधा के हृदयस्थ पूर्णानुराग का सागर समुद्भूत भगवान का मुख चन्द्र है। इसके अतिरिक्त उनकी माधुर्याधिष्ठात्री महाशक्ति उन्हीं में शुद्ध प्रेम होता है। तत्व और तत्व का सम्बन्ध मुख्य है। इसी तरह जीवात्मा और परमात्मा का सम्बन्ध मुख्य है अविच्छिन्न है।

तत्व और तत्व का संबंध मुख्य नहीं है। जो गलत और नासिकाय ही हो ऐसे ... को प्रेम कहना उसका अपमान करना है। यह ... है कि उस ... भी ... कुछ रहना आवश्यक है।

प्रणय की ... ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो ... नहीं करते किन्तु कुछ ही हो सकते हैं अधिक नहीं। ... व्यक्ति कुछ हो सकते हैं लेकिन वे ... नहीं होते उनको प्रणय की निस्वार्थी ... नहीं होता। वे ... नहीं है! ... ' ... ' ... है।

– ... शास्त्री

... पुर

(मालवा आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण मंडल, इन्दोर की अर्द्ध वार्षिक पत्रिका 'कलश' के मार्च 2010 के अंक में प्रकाशित)

श्रद्धांजली

जयपुर निवासी उद्भट विद्वान, वैद्य महाराजा श्रीरविशंकरजी भट्ट को श्रद्धांजली देना अर्थात महासागर की सीमाएँ बांधने सा असाध्य कार्य है, उनकी मुख्य विशेषताओं की चर्चा करने में भी एक पूर्ण पुस्तक बन सकती है। इस महामानव में अनोखी विशेषताएँ थी जिनसे स्थापित संपूर्ण औदुम्बर समाज का परिचय ही नहीं हो पाता है। एक ख्यातिलब्ध वैद्य, संगीत मार्तंड, वेद शास्त्रों के विवेचक, संस्कृत रचनाओं के मूर्धन्य रचनाकार, एक विशिष्ट हास्य शैली के सहज प्रवर्तक, अद्भुत व्यक्तित्व के धनी और रिश्तों में प्रेम की मिठास परोसने के कुशल आग्रहकर्ता। इन्हीं विशेषताओं से परिपूर्ण होने के बाद भी मुझ जैसे संस्कृत और साहित्य के नव विद्यार्थी के कुशल समाधानकर्ता। उनके साथ महाकाल और ओंकारेश्वर की गई यात्रा मेरे लिए एक अमूल्य धरोहर हो गयी है, जिसकी जुगाली का आनंद मैं जीवन पर्यंत तक नहीं भूल सकता। इंदौर से कार में बैठते ही मैंने उनके स्वभाव अनुसार क्लासिकल रागों पर आधारित कुछ गानों की झड़ी लगा दी फिर तो उस सी.डी. के हर गाने की राग, समय और उस राग की विशेषता का जो अभूतपूर्व ज्ञान उनके मुख से अमृत समान झरने लगा की, उस अमृतवर्षा का पान संपूर्ण जिंदगी तक बना रहेगा। आप आयुर्वेद के न सिर्फ गहन जानकार ही नहीं थे अपितु संपूर्ण जीवन इसके लिये समर्पित आग्रही रहे, और इसी के नियमानुसार उन्होंने जीवन के अंतिम क्षण तक स्वस्थ जीवन जिया। संस्कृत में कुछ रचना मैंने प्रथम बार की और बहुत ही झिझक के साथ मैंने उनसे सुनने का [illegible] किया। मुझे लगा कि इतने उद्भट विद्वान शायद मुझे मेरी धृष्टता पर डाँट भी दें, लेकिन आश्चर्य का [illegible] कि उन्होंने न सिर्फ इसे सुना, बल्कि इसमें [illegible] व्याकरण की त्रुटियों पर भी प्रकाश डालकर उसे दूर किया और मुझे आगे लिखते रहने के लिए भी [illegible] किया यह उनका उदार मन और सहजता थी कि मैं [illegible] संस्कृत रचना का [illegible], पर [illegible] शायद ही संभव हो सके क्योंकि एक सहज, समाधानकर्ता मुझसे दूर हो गया।

म.आ.औं. मंडल द्वारा आयोजित सामूहिक यज्ञोपवीत समारोह की अध्यक्षता करने के हमारे आमंत्रण को उन्होंने जिस सरलता से स्वीकार किया उसका मंडल सदा ऋणी रहेगा। पूज्य ज्योतिषी [illegible] स्वामी श्री [illegible] जी ने भी उनकी विद्वता का लोहा माना था। जब हमने कहा की 'आज हम जाति के सभी क्षेत्र के महापुरुषों को इसमें आमंत्रित कर रहे हैं' तो उन्होंने अपनी विशिष्ट हास्य शैली में कहा कि, 'अभी तो मैं संपूर्ण पुरुष ही नहीं बन पाया हूँ' अद्भुत, विद्वता, सहजता और हास्यपूर्ण व्यक्तित्व के [illegible] आपने मेरे [illegible] पर 'कलश पूजा' में कई रचनाएँ [illegible] और हमारा [illegible] मार्गदर्शन किया। उनके लिए बस उनकी यही पंक्तियाँ समर्पित करता हूँ जो उन्होंने हमारे [illegible] के लिए लिखी थीं।

यथा भावना भक्ति भावेन [illegible]
[illegible] दर्शने दर्शनेन
चिदानंददाता सदानंदरूप
[illegible]

[illegible] के चरण कमलों में [illegible] से अविश्रांत दृष्टि प्राप्त हुई है। इस महापुरुष के महाप्रयाण पर [illegible] श्रद्धासुमन म.आ.औं.ब्रा. मंडल अर्पित कर नमन करता है।

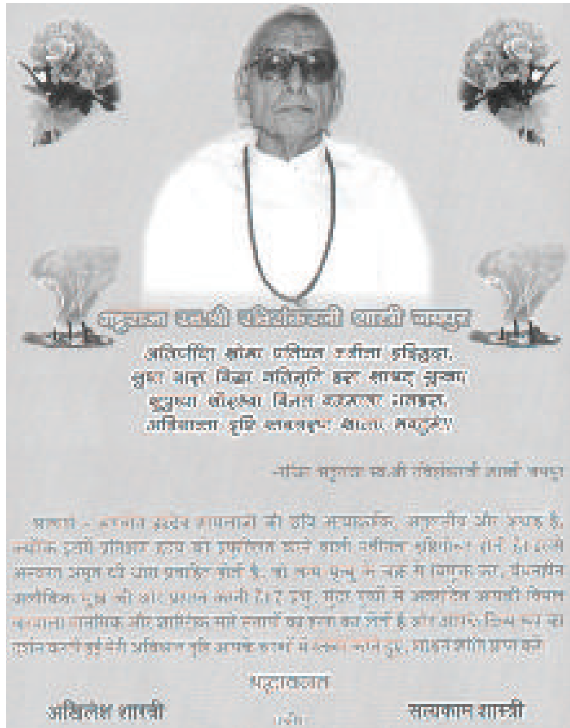

(**मालवा आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण मंडल, इन्दोर** की अर्द्ध वार्षिक पत्रिका **'कलश'** के जनवरी 2013 के अंक में प्रकाशित)

राजगुरू भट्टराजा वैद्य रविशंकर जी शास्त्री

ॐ सहनाववतु ।।सहनौभुनक्तु।। सह वीर्यं करवावहै ।।तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै।।
ॐ भद्रं कर्णेभिः श्रृणुयाम देवाः। भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।। स्थिरैरंगैस्तुष्टुवां सस्तनूभिः।
व्यशेम देवहितं यदायुः।। ॐ स्वस्तिनः इन्द्रो वृद्धश्रवाः। स्वस्तिनः पूषा विश्ववेदाः।।
स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो ऽअरिष्टनेमिः। स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु।। ॐ शांतिः । शांतिः ।। शांतिः ।।

सर्व आभ्यन्तर औदुम्बर ब्राह्मण समाज, जयपुर द्वारा वयोवृद्ध नागरिक सम्मान प्राप्त करते हुए
राजगुरू भट्टराजा वैद्य रविशंकर जी शास्त्री (वर्ष 2010)

श्री देवगदाधरो विजयते
(श्यामलाजी, गुजरात)

श्री गणेशाय नमः
(मोती डुंगरी, जयपुर)

श्री राधा गोविन्दाय नमः
(श्री गोविन्द देव जी, जयपुर)

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः।।
(श्रीमद्भगवद्गीता 18।46)